समरथ

जनवरी – फरवरी 2006 **नई दिल्ली**

नाहि तो जनम नसाई

'फिर आदमी की याद्दाश्त की भी एक हद होती है'। अपनी कविता की यह पंक्ति लिखते समय राजेश जोशी के मन में ज़रूर हमारी असंवेदनशीलता के प्रति रोष रहा होगा। रहे होंगे पीड़ा, क्रोध, करूणा जैसे मिले–जुले भाव। जहां कविता एक ओर एक कवि का मज़ार ध्वस्त किए जाने पर दूसरे कवि की प्रतिक्रिया है वहीं दूसरी ओर बार–बार यह भविष्यवाणी भी करती है कि अन्य घटनाओं की तरह गुजरात की घटना भी बहुत जल्द अतीत में घटी अनेक घटनाओं जैसी एक और घटना बनकर रह जाएगी। भयंकर और भयावह हिंसा का पूरा घटनाक्रम हमें याद भी न रहेगा। ठीक वैसा ही हुआ। इस हद तक कि यदि आप किसी से पूछें कि गुजरात की घटना कब घटी तो सन् और महीने भी सोचकर कभी सही और कभी गलत बताए जाते हैं।

ऐसा तब जबकि थोड़े–थोड़े अंतराल के बाद सांप्रदायिक हिंसा अपना विकराल रूप दिखाती रहती है। क्या हम ऐसी हिंसा के आदी हो चुके हैं ? या फिर हमारी उदासीनता इस कदर बढ़ गयी है कि हिंसा चलती रहे और हम केवल मूक दर्शक बने रहें और अगले ही पल उसे भूल जाएं। उत्तर प्रदेश में मऊ ज़िला नवम्बर–दिसम्बर 2005 में लगभग दो महीने तक सांप्रदायिक हिंसा चली। लेकिन विरोध के स्वर नहीं सुनायी दिए। भोजशाला का मुद्दा गरमाया पर किसी ने आवाज़ न उठायी। गिरजाघरों पर हमले हुए, हम खामोश रहे। क्या हम फिर गुजरात जैसी घटना की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब विरोध करना मजबूरी ही बन जाए।

हम कार्यकर्ता – संवेदनशील और प्रतिबद्ध कार्यकर्ता स्वयं को समाज के लिए समर्पित बताने वाले कार्यकर्ता। हमारे लिए आवश्यक यह नहीं है कि हम ऐसी घटनाएँ भूलें और मात्र कामना करें कि ऐसी घटनाएं फिर न घटें। आवश्यक यह है कि हम गुजरात की घटनाओं को बार–बार याद करें और संकल्प लें कि ऐसी घटनाएं न घटने की हम मात्र कामना ही न करें बल्कि अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर ऐसी घटनाएं न घटने देने का पुरज़ोर प्रयास करें। यह फरवरी का महीना है और इसी महीने की 27 तारीख को गोधरा कांड हुआ और बेरोक चला जनसंहार 28 से पूरे गुजरात में महीनों तक। जिसके असरात आज भी नज़र आ रहे हैं। ताज़ा मिसाल है भूतवाड़ा में मिले 21 शव जिनको बिना शिनाख्त के दफना दिया गया था। राजेश जोशी की प्रस्तुत कविता इससे सबक सीखने में निश्चित रूप से कारगर होगी।

वली दकनी

राजेश जोशी (2002)

बात इक्कीसवीं सदी की पहली दहाई के शुरूआती दिनों की है
जब बर्बरता और पागलपन का एक नया अध्याय शुरू हो रहा था
कई रियासतों और कई किस्म की सियासतों वाले एक मुल्क में गुजरात नाम का एक सूबा था
जहां अपने हिंदू होने के गर्व और मूर्खता में डूबे हुए क्रूर लोगों ने–
जो सूबे की सरकार और नरेन्द्र मोदी नामक उसके मुख्यमंत्री के
पूरे संरक्षण में हज़ारों लोगों की हत्याएं कर चुके थे
और बलात्कार की संख्याएं जिनकी याद्दाश्त की सीमा पार कर चुकी थीं

–एक शायर जिसका नाम वली दकनी था, का मज़ार तोड़ डाला!

वह हिंदी उर्दू की साझी विरासत का कवि था
जो लगभग चार सदी पहले हुआ था और प्यार से जिसे बाबा आदम भी कहा जाता था!

हालांकि इस कारनामे में एक दिलचस्प परिणाम सामने आया
कि वह कवि जो बरसों से चुपचाप अपनी मज़ार में सो रहा था
मज़ार से बाहर आ गया और हवा में फैल गया!
इक्कीसवीं सदी के उस शुरूआती साल में एक दूसरे कवि ने
जो मज़ार को तोड़ने वालों के सख़्त खिलाफ था
किसी तीसरे कवि से कहा कि
मैं दंगाइयों का शुक्रिया अदा करना चाहता हूं!
फिर तीसरे कवि ने चौथे कवि से भी यही बात की
कि मैं दंगाइयों का शुक्रिया अदा करना चाहता हूं
कि उन्होंने वली की मज़ार की मिट्टी को
सारे मुल्क की मिट्टी, हवा और पानी का
हिस्सा बना दिया!

अपने हिंदू होने के गर्व और मूर्खता में डूबे उन लोगों को
जब अपने इस कारनामों से भी सुकून नहीं मिला
तो उन्होंने रात दिन मेहनत मशक्कत करके
गेंदालाल पुरबिया या छज्जूलाल अढ़ाऊ जैसे ही किसी नाम का एक कवि और उसकी कविताएं ढूंढ निकालीं

और उन्होंने दावा किया कि वह वली दकनी से भी अगले वक़्त का कवि है
और छद्म धर्मनिरपेक्ष लोगों के चलते उसकी उपेक्षा की गई
वरना वह वली से पहले का और ज़्यादा बड़ा कवि था!
फिर उन लोगों ने जिनका ज़िक्र कई बार किया जा चुका है
कोर्स की किताबों से वो सारे सबक़ जो वली दकनी के बारे में लिखे गए थे चुन–चुन कर निकाल दिए।

यह किस्सा क्योंकि इक्कीसवीं सदी की भी पहली दहाई के शुरूआती दिनों का है
इसलिए बहुत मुमकिन है कि कुछ बातें सिलसिलेवार न हों
फिर आदमी की याद्दाश्त की भी एक हद होती है।

और कई बातें इतनी तकलीफदेह होती हैं कि उन्हें याद रखना और दोहराना भी तकलीफदेह होता है
इसलिए उन्हें यहां जान–बूझकर भी कुछ नामालूम–सी बातों को छोड़ दिया गया है
लेकिन एक बात जो बहुत अहम है और सौ टक्के सच है
उसका बयान कर देना मुनासिब होगा
कि वली की मज़ार को जिन लोगों ने नेस्तनाबूत किया
या यह कहना ज़्यादा सही होगा कि करवाया
वे हमारी आपकी नस्ल के कोई साधारण लोग नहीं थे
वे कमाल के लोग थे
उनके सिर्फ शरीर ही शरीर थे
आत्माएं उनके पास नहीं थीं
वे बिना आत्मा के शरीर का इस्तेमाल करना जानते थे
उस दौर के किस्सों में कहीं–कहीं इसका उल्लेख मिलता है
कि उनकी आत्माएं उन लोगों के पास गिरवी रखी थीं,

जो विचारों में बर्बरों को मात दे चुके थे
पर जो मसखरों की तरह दिखते थे
और अगर उनका बस चलता तो प्लास्टिक सर्जरी से
वे अपनी शक्लें हिटलर और मुसोलिनी की तरह बनवा लेते !

मुझे माफ करें मैं बार–बार बहक जाता हूं
असल बात से भटक जाता हूं
मैं अच्छा किस्सागो नहीं हूं
पर अब वापस मुद्दे की बात पर आता हूं

कोर्स की किताबों से वली दकनी वाला सबक
निकाल दिये जाने से भी जब उन्हें सुकून नहीं मिला
तो उन्होंने अपने पुरातत्वविदों और इतिहासकारों को तलब किया
और कहा कि कुछ करो, कुछ भी करो
पर ऐसा करो कि इस वली नाम के शायर को
इतिहास से बाहर करो!

यकीन करें मुझे आपकी मसरूफियतों का ख़याल है
इसलिए उस तवील वाकिये को मैं नहीं दोहराऊंगा
मुख़्तसर यह कि
एक दिन...!

ओह मेरा मतलब यह कि
इक्कीसवीं सदी की पहली दहाई के शुरूआती दिनों में एक दिन
उन्होंने वली दकनी का हर निशान पूरी तरह मिटा दिया
मुहावरे में कहें तो कह सकते हैं
नामोनिशान मिटा दिया!

उन्हीं दिनों की बात है कि एक दिन

जब वली दकनी की हर याद को मिटा दिए जाने का
उन्हें पूरा इत्मीनान हो चुका था
और वे पूरे सुकून से अपने–अपने बैठकख़ानों में बैठे थे
तभी उनकी छोटी–छोटी बेटियां उनके पास से गुज़री
गुनगुनाती हुई
.....
वली तू कहे अगर यक वचन
रकीबां के दिल में कटारी लगे!

साँच कहें तो मारन धावै

समाजवाद लोहिया के वारिसों का !

आइ.एस.डी.

मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी अपने आपको लोहिया का वारिस मानती है। समाजवाद को भारतीय संदर्भ में समझने का दावा करती है। मानती है कि उसके अलावा भारत में वर्ग और जाति संघर्ष की व्याख्या को कोई और नहीं समझता। खासकर कम्यूनिस्ट तो बिल्कुल नहीं। इस विचारधारा पर आधारित समाजवादी पार्टी पिछले कई बरसों से अपना समाजवाद फैलाने के लिये जातिवादी, सांप्रदायिक और कट्टरपंथी भाजपा और आरएसएस जैसी पार्टियों से गठबंधन करने में ज़रा भी गुरेज़ नहीं करती। 'समाजवादी' नेता जार्ज फर्नांडिस के अधोपतन से कौन वाकिफ नहीं है। डर और फिक्र की बात तो ये है कि मुलायम सिंह यादव भी जार्ज फर्नांडिस के पर्यायवाची होते जा रहे हैं। वो पिछले कई महीनों से भ्रष्टाचार और सांप्रदायिकता का समाजवाद फैलाते नज़र आ रहे हैं। 1993 के दलेरगंज जनसंहार में छह मुसलमानों को मार डालने के मामले में नामज़द मुख्य अभियुक्त निर्दलीय विधायक रघुराज प्रतापसिंह उर्फ राजा भैया जैसे 'कुंडे के इस गुंडे' को मुलायमसिंह 'नई पीढ़ी के लिये प्रेरणा स्त्रोत' बता रहे हैं। यही नहीं पोटा के तहत जेल में बंद राजा भैया को जेल से रिहाकर जुलाई 2004 में कैबिनेट मंत्री बनाया। सुप्रीम कोर्ट के 10 नवम्बर 2005 के आदेश की वजह से राजा भैया को मंत्री पद से इस्तीफा देकर 14 नवम्बर को फिर पोटा अदालत में हाज़िर होकर जेल जाना पड़ा। इसी तरह समाजवादी पार्टी के विधायक अमरमणि त्रिपाठी का अपराधिक रिकार्ड भी काफी अच्छा है। ये कवियत्री मधुमिता शुक्ल की हत्या के मामले में मुख्य अभियुक्त हैं। इनको मुलायम 'लोकतंत्र का रक्षक' और 'उत्तर प्रदेश को मुसीबत से बचाने वाला' बताते आये हैं। राजा भैया की तरह ही सुप्रीमकोर्ट ने अमरमणि और उसकी बीवी मधुमणि की ज़मानत की अर्जी खारिज कर फिर से जेल भेज दिया। अपराधी सरगना निर्दलीय विधायक मुख्तार अंसारी पर मुलायम मेहरबान हैं। बदनाम आईएएस अफसर अखंड प्रताप सिंह और नीरा यादव पर मुलायम का प्रेम किसी से भी छुपा नहीं है। इन दोनों अफसरों को सुप्रीमकोर्ट के आदेशों के बाद मुख्य सचिव के पद से हटना पड़ा।

भ्रष्टाचार को, हम ये कहकर कि ये तो अब भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा बन गया है, नज़रअंदाज कर सकते हैं। तथ्यों के मुताबिक भारत में हर साल इक्कीस हज़ार करोड़ रुपये रिश्वत में लिये दिये जाते हैं। पर सांप्रदायिकता, कट्टरपंथिता और अल्पसंख्यक विरोधिता समाज का अभिन्न हिस्सा नहीं बनी हैं। वामपंथी और धर्मनिरपेक्ष ताकतें अभी मजबूती से काम कर रही हैं। अपने को सेकुलरवाद और समाजवाद का मसीहा कहने वाले मुलायम उत्तर प्रदेश की राजनीति जिस दिशा में ले जा रहे हैं वो बहुत ही चिन्ताजनक है। राज्य के पूर्वांचल में हथकरघा उद्योग का एक प्रमुख केंद्र मऊ 13 अक्टूबर 2005 को देर शाम से अगले पूरे एक सौ घंटे से भी ज़्यादा बेरोकटोक जलता–जलाया जाता रहा। शहर में 14 अक्टूबर से 16 नवम्बर तक बेमियादी कर्फ्यू लगा रहा। गोरखपुर से हिंदू युवा वाहिनी और भाजपा के दंगाइयों द्वारा शुरू की गई सांप्रदायिक हिंसा को सत्तारूढ़ समाजवादी पार्टी और जिला पुलिस और प्रशासन की तरफ से खुल्लम–खुल्ला संरक्षण दिया गया। इस हिंसा में आठ लोग (मुसलमान) मारे गये, दर्जनों घायल हुए और 30 करोड़ रुपये से ज़्यादा की संपत्ति नष्ट की गयी। ये सब सरकार के समर्थन के बिना नामुमकिन था।

तथ्यों को अगर विश्लेषण किया जाये तो जब से मुलायम तीसरी बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने (29 अगस्त 2003) तब से उनकी सरकार जिस तरह आरएसएस, भाजपा और हिंदू युवा वाहिनी जैसी सांप्रदायिक, फासीवादी ताकतों को बढ़ावा दे रही है और अपने राजनीतिक फायदों के लिये इनसे साठगाँठ कर रही है – मऊ का दंगा उसी का नतीजा है। सच तो यह है कि लंपट और फासीवादी हिंदू युवा वाहिनी के ज़रिये जिसे भाजपा के लालजी टंडन और विहिप के अशोक सिंघल का आशीर्वाद है, समाजवादी लोहिया के समाजवादी वारिस मुलायम ने अल्पसंख्यकों (मुसलमानों) पर निशाना साधा है। जिस संगठन पर किसी भी समाजवादी नेता को पाबंदी लगानी चाहिये थी मुलायम ने उसे फलने–फूलने के पूरे मौके दे रखे हैं। और साफ है कि भाजपा को खोई हुई ताकत हासिल करने का मौका दिया है।

कुछ पर्यवेक्षकों का मानना है कि उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह समाजवादी पार्टी की मुख्य प्रतिद्वंदी बसपा को, जो आजकल एक ताकत के रूप में उभरकर आयी है और सत्ता की लड़ाई में लगी है, इस लड़ाई से बाहर कर उसकी जगह अपनी मददगार और दोस्त भाजपा को लाना चाहते हैं। अगस्त 2003 में भाजपा ने ही मुलायम की सरकार बनवायी थी। इसलिये भी मऊ के दंगे सुनियोजित तरीके से कराये गये।

एक बात और याद रखने की है कि मऊ के दंगों के लिये मुलायम सिंह ने न तो हिंदू युवा वाहिनी, न भाजपा, और न ही आरएसएस का नाम लिया, न ही ज़िम्मेदार ठहराया और न ही इन पर वैचारिक–राजनीतिक हमला किया। बल्कि निर्दलीय विधायक मुख्तार अंसारी जिसे समाजवादी पार्टी का बाहर से समर्थन प्राप्त है और जिसकी मऊ दंगों में कोई बड़ी भूमिका नहीं बतायी जा रही उसे एक दूसरे मामले में समर्पण कराकर और भाजपा विधायक रामजी को गिरफ्तार कराकर मुलायम

ने सांप्रदायिक संतुलन बनाने की गहरी चाल चली।

मुलायम के सवा दो साल के राज में कई सालों से सक्रिय हिंदू युवा वाहिनी की पूर्वांचल और अवध में पैठ बढ़ी है। सितम्बर महीने में सीतापुर ज़िले के मधरेटा कस्बे में वाहिनी के दंगाइयों ने गोकशी का झूठा मामला बनाकर कई मुसलमानों के घरों और दुकानों को लूट लिया और आगजनी के इन दंगाइयों पर भाजपा के लालजी टंडन ने कोई कार्रवाई नहीं होने दी। नवम्बर महीने में बाराबंकी ज़िले में भी ऐसी ही घटना हुई थी। सितम्बर के दूसरे हफ्ते में चित्रकूट में हुए सपा प्रशिक्षण शिविर में भी संघ–भाजपा और सपा की दोस्ती साफ दिखायी दी।

आरएसएस प्रमुख के. एस. सुदर्शन और समाजवादी पार्टी प्रमुख मुलायम सिंह यादव की लखनऊ में मुलाकात भी इसी संदर्भ (दोस्ती) में देखी जानी चाहिये। सुदर्शन के फोन करने पर मुलायम ने अपनी सुरक्षा में लगे एक पीसीओ को लालबत्ती वाली गाड़ी में संघ प्रमुख को लाने के लिये भेज दिया। एक दिसम्बर 2005 को दोनों की ये बैठक एक घंटे बीस मिनट मुख्यमंत्री के घर पर चली। ये बात गौर करने की है कि जबसे मुलायम मुख्यमंत्री बने हैं तब से संघ प्रमुख कई बार लखनऊ आ चुके हैं पर मिलने की इच्छा इसी बार ज़ाहिर की! मऊ दंगों के बाद इस मुलाकात की अहमियत और भी बढ़ जाती है। संघ के सूत्रों के मुताबिक इस मुलाकात का मकसद मुलायम को ये समझाना था कि वो संघ की असलियत समझें, क्यों उन्हें भाजपा पर भरोसा करना चाहिये और क्यों आपसी दोस्ती बढ़ानी चाहिये। भाजपा का रुख भी मुलायम की तरफ नर्म है और वो भी कभी उसे निशाना नहीं बनाती। लखनऊ में वकीलों पर हुए लाठीचार्ज को लेकर भाजपा की राज्य इकाई की सरकार की बर्खास्तगी की माँग की, अटल बिहारी वाजपेयी ने पार्टी के राज्य इकाई के अध्यक्ष केशरी नाथ त्रिपाठी के खिलाफ आलोचना कर हवा निकाल दी। भाजपा के नेता कृष्णानंद राय की हत्या के मामले में भी भाजपा ने मुलायम पर कोई हमला नहीं किया बल्कि आडवाणी ने प्रधानमंत्री को निशाना बनाया जबकि पूर्व गृहमंत्री जानते हैं कि कानून–व्यवस्था का मामला राज्य की ज़िम्मेदारी है।

भगवा ब्रिगेड का मुलायम के प्रति सॉफ्ट कार्नर वैसे कोई नया नहीं है। मुलायम के मुख्यमंत्री बनते ही, संघ के मुखपत्र 'पॉचजन्य' में उनकी (मुलायम सिंह) भरपूर तारीफ की गयी। चित्रकूट में हुए समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय शिविर में नानाजी देशमुख से मुलायम न केवल मिलने गये बल्कि उन्होंने राम मनोहर लोहिया भवन के लोकार्पण पर नानाजी देशमुख को अपने साथ मंच पर भी बैठाया। नानाजी देशमुख ने मुलायम की तारीफ के पुल बाँधे और जवाब में मुलायम ने ये तक कहा कि '1990 में अयोध्या आंदोलन के दौरान इस मसले पर नानाजी देशमुख उनके संकटमोचक थे।' पिछले साल संघ के कार्यक्रम में मुलायम के दो केबिनेट मंत्रियों द्वारा शिरकत संघ और सपा के बीच रिश्तों का एक और सबूत है। मुलायम का हिंदू धर्म के प्रति अगाध प्यार भी नया नहीं है। प्रतापगढ़ में सवा सौ करोड़ की लागत से बनने वाले राधाकृष्ण मंदिर में सपाईयों की भारी भीड़ जुटी। यहाँ मुलायम ने घोषणा की कि वो काशी विश्वनाथ मंदिर के तीसरे शिखर को सोने से मढ़वायेंगे। साफ है मुलायम को धर्म के रंग में रंगने में कोई गुरेज़ नहीं है। हाल ही में सपा ने बिहार में परम्परावादी समाजवादियों और परंपरावादी संघियों के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। भाजपा से निष्कासित उमा भारती की राम रोटी यात्रा जैसे ही उत्तर प्रदेश अयोध्या में दाखिल हुई मुलायम सिंह ने सभी जिला प्रशासनों को आदेश दिया कि उमा भारती को स्टेट गेस्ट का दर्जा दिया जाये। ज़ाहिर है उत्तर प्रदेश के मुसलमानों को उमा भारती का ये 'रेड कार्पेट' स्वागत अच्छा नहीं लगा। नायब इमाम ईदगाह मौलाना खालिद राशिद ने उमा भारती के इस स्तर के स्वागत पर आश्चर्य जताया।

हाल ही में स्वामी रामदेव (जिनका असली नाम राम कुमार यादव है और जो हरियाणा में पैदा हुए थे) को लेकर जो सीपीएम की वृंदा करात द्वारा श्रमिक कानूनों और दवाइयों संबंधी कानूनों के उल्लंघन के उठाये मुद्दों पर मुलायम सिंह यादव रामदेव के समर्थन में खड़े पाये गये। सब जानते हैं कि इस मुद्दे पर भाजपा, शिवसेना और दूसरी हिंदुत्ववादी ताकतों ने रामदेव का साथ दिया और प्रदर्शन किये।

ऊपर लिखी सभी बातें साबित करती हैं कि सपा और भाजपा के बीच कितने करीबी रिश्ते हैं और मुलायम सिंह बसपा और कांग्रेस विरोध में भाजपा के साथ जाने में कोई परहेज़ नहीं कर रहे हैं। **वामपंथी पार्टियों खासकर सी.पी.एम. का मुलायम सिंह की हर बात पर समर्थन, ये गहरी चिन्ता का विषय है। सीपीएम को समझना चाहिये कि हिंदी क्षेत्र में अपनी पैठ बनाने के लिये उत्तर प्रदेश में मुलायम का समर्थन मतलब कट्टरपंथियों, फासीवादी ताकतों का समर्थन है।**

पृष्ठ 17 का शेष...

जैसे जवानी की दहलीज पर कदम रखना
जैसे नयी–ताज़ी हवाओं से दोस्ती करना
जैसे भीड़ में और खुद में खो जाना
जैसे बर्फीली चट्टानों का पिघल जाना
जैसे दुनियावी झंझटों से बाहर निकल आना
जैसे बंद दरवाजों से आखिर बग़ावत करना...

प्यार तो तितलियों का रंग है
प्यार तो जीने का ढंग है
प्यार तो कड़वाहटों से जंग है...

आवाज, लखनऊ

भाजपा = अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार और यौनाचार

डा. योगेश भटनागर

कुल 25 साल पुरानी भाजपा के रजत जयन्ती वर्ष में ही भाजपा का पूरी तरह से असली चेहरा सामने आ गया। अपने को नैतिक आचरणों, सदव्यवहार और अन्य सब राजनीतिक पार्टियों से अलग ऐलान करने वाली पार्टी पूरी तरह भ्रष्टाचार और यौनाचार में लिप्त, अनुशासनहीनता और अंर्तकलह में उलझी हुई पार्टी साबित हुई। जब तक भाजपा–एनडीए सत्ता में थी तब तक सत्ता में बने रहने की राजनीति की वजह से भाजपा ने अपनी विचारधारा को ठंडे बस्ते में रखा। अपने अंदर के भ्रष्टाचार और अनैतिकता को बाहर मीडिया और प्रेस में नहीं आने दिया। वैसे भी 2003 के आते–आते उदारवादी मीडिया और प्रेस भी भाजपा–एनडीए को इस तरह से प्रोजेक्ट कर रहा था मानो आने वाले लोकसभा चुनावों में भाजपा–एनडीए की जीत सुनिश्चित है। पर अभी भाजपा की हार के दो साल भी पूरे नहीं हुए कि भाजपा का असली चरित्र जनता के सामने आ गया है। पिछले पूरे डेढ़ साल तक भाजपा दागी मंत्रियों और वोल्कर रिपोर्ट को लेकर पार्लियामेन्ट में काम को अवरोधित करती रही पार्टी खुद कितनी भ्रष्ट और अनैतिक है ये सामने आया। देखिये भाजपा में भ्रष्टाचार किस हद तक फैला हुआ है।

एनडीए शासनकाल में भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता जसवंत सिंह वित्त मंत्रित्व का फायदा उनकी पत्नी शीतल कंवर को आयकर के एक मामले में विवादास्पद भारी छूट से मिला। जिस 100 बीघा भू–संपत्ति को जोधपुर के आयकर आकलन अधिकारी और आयकर आयुक्त (अपील) तो क्या, आयकर (अपील) न्यायाधिकरण तक ने शीतल कंवर की बेनामी पर वास्तविक मिल्कियत माना था उसे दिल्ली के तत्कालीन आयकर आयुक्त (अपील) ने नियम तोड़कर जसवंत सिंह और उनकी पत्नी की आया सुगन कंवर की मिल्कियत करार दे दिया जिसका नाम उस बेनामी संपत्ति के सिर्फ मुखौटे और मुहर के तौर पर इस्तेमाल होता था। इस तरह तत्कालीन वित्त मंत्री की पत्नी को उस ज़मीन के 58 लाख रुपये मुआवजे पर बेकायदा छूट दी गयी। यह बात याद रखने की है कि जिस तरह हाईकोर्ट सुप्रीमकोर्ट के आदेश को कानून नहीं बदल सकता उसी तरह न्यायाधिकरण के आदेश को आयकर आयुक्त (अपील) कानूनन नहीं पलट सकता इसके बावजूद विभाग ने फिर न्यायाधिकरण में अपील नहीं की। ज़ाहिर है मामला अपने ही वित्त मंत्री का था। नतीजा यह है कि 58 लाख रुपये टैक्स का किसी के नाम से पत्नी हो या आया कोई आकलन आज तक नहीं है। कानूनन आयकर विभाग देरी के लिये माफी प्रार्थना के साथ आज भी न्यायाधिकरण में अपील कर सकता है पर यूपीए सरकार इस मामले में ताजा विभागीय राय के बावजूद न्यायाधिकरण में अपील करने में कोताही कर रही है। यूपीए सरकार के वित्त मंत्री की भाजपा के भूतपूर्व वित्त मंत्री के प्रति ये उदारता कुछ और ही बयान करती है। एक बात और जिन अफसरों ने वित्त मंत्री जसवंत सिंह को उपकृत किया उन्हें रिटायरमेन्ट के बाद भी लाभकारी नियुक्तियाँ मिलीं। ये सब वैसे नैचुरल है।

एनडीए सरकार के शहरी विकास मंत्री अनंत कुमार और राज्यमंत्री बंडारू दत्तात्रेय द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय शहरी आवासीय योजनाओं के लिये उधार देने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय कम्पनी हाउसिंग एंड अर्बन डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (हुडको) में उधार देने के मामले में सारे कानून ताक पर रखकर मनमानी की गयी। इन मंत्रियों ने ये मनमानी पूर्व भाजपा अध्यक्ष वेंकैया नायडू के कहने पर की और इन मंत्रियों की मनमानी का विरोध करने वाले हुडको के तत्कालीन निदेशक (वित्त) का सेवा अनुबंध खत्म कर नौकरी से हटा दिया गया। निदेशक कोर्ट गया और केंद्रीय सतर्कता आयोग (सी.वी.सी.) ने अनंत कुमार के कार्यकाल के दौरान मंजूर किये गये ऋणों की विजिलेंस ऑडिट में पाया कि इस दौरान बहुत ज़्यादा अनियमितताएं हुईं। साल 2002–2003 के दौरान हुडको ने 14,500 करोड़ रुपये और 2003–2004 में 872 करोड़ रुपये के ऋण बाँटे। इस आवंटन में खूब वित्तीय अनियमितताएँ हुईं, नियमों और वित्तीय अनुशासन और सरकारी दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया गया।

केंद्र सरकार ने शहरों में आम आदमी की आवासीय ज़रूरतों को पूरा करने के लिये धन जुटाने हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की वित्त कंपनी हुडको की स्थापना की थी। इसके मेमोरेन्डम ऑफ एसोसिएशन (एमओए) के मुताबिक कंपनी का मुख्य काम 'देश में आवासीय उद्देश्यों को पूरा करने के लिये भवन निर्माण के लिये धन उपलब्ध' कराना है। लेकिन भाजपा–एनडीए सरकार ने एमओए को दरकिनार कर पाँच सितारा होटलों और मेडिकल कॉलेज बनाने के लिये करोड़ों रुपयों का उधार दिया, निजी कंपनियों के डिबेंचर खरीदने में हुड़को के करोड़ों रुपये लगाये। गुजरात विधानसभा चुनावों के दौरान भाजपा को फायदा पहुँचाने के लिये हुडको ने राज्य के एक बिजली बोर्ड़ को 250 करोड़ रुपये दिये। **भाजपा–एनडीए राज के दौरान 90 फीसदी ऋण सिंचाई, बिजली, संचार, होटल, सीमेंट और गोल्फ कोर्स के क्षेत्रों में बाँटे गये जबकि हुडको का फोकस कमज़ोर वर्ग को आवास के लिये पैसा उधार देना है।**

सीवीसी की विजिलैंस ऑडिट टीम ने अपनी जाँच के

दौरान पाया कि निर्माण क्षेत्र की प्रमुख कंपनी जेपी समूह के ग्रेटर नोएडा के जेपी ग्रीन्स परियोजना के लिये हुडको बोर्ड ने मार्च 2003 में 146 करोड़ 20 लाख रुपये के प्रस्ताव को मंजूर किया। मई 2004 में हुडको बोर्ड ने आंध्र प्रदेश के होटल समूह श्री शक्ति रिसोर्ट एंड होटल्स लिमिटेड को हैदराबाद में पाँच सितारा होटल बनाने के लिए 23 करोड़ 64 लाख 80 हजार रुपये का उधार मंजूर किया। मार्च 2003 में गोयनका समूह को कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी को 300 करोड़ रुपये का उधार दिया। जनवरी 2004 में गुजरात में सीमेंट फैक्ट्री के लिये सांधी इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड के लिए 200 करोड़ मंजूर किये। दिसम्बर 2002 में हुडको बोर्ड ने दिल्ली में धौला कुआँ–गुड़गाँव टोल रोड के निर्माण के लिये जेपी डीएसी वेंचर्स लिमिटेड को 200 करोड़ का उधार मंजूर किया। तापी इरिगेशन डेवलेपमेंट कार्पोरेशन, महाराष्ट्र में बॉन्डस खरीदने के लिये 175 करोड़ रुपये का उधार दिया। यही नहीं 20 दिसम्बर 2002 को शहरी विकास मंत्री अनंत कुमार और केंद्र सरकार के शहरी रोज़गार एवं गरीबी उन्मूलन विभाग के तत्कालीन सचिव ने 50 परियोजनाओं के लिये 5,292 करोड़ रुपयों का ऋण सिर्फ 45 मिनट की बोर्ड की बैठक में मंजूर किया।

सभी जानते हैं कि **भाजपा के वेंकैया नायडू हैदराबाद के होटल समूह श्रीशक्ति रिसोर्ट एंड होटल्स से जुड़े हैं।** इसके अलावा हैदराबाद का होटल पाइस और चेन्नई में सीफूड के लिये मशहूर रेस्तरां 'कराई कुड़ी' वेंकैया के करीबी रिश्तेदारों के हैं। भाजपा की कार्यकारिणी चेन्नई के जिस होटल में हुई, उसके मालिक से भी वेंकैया नायडू के करीबी रिश्ते हैं। **वेंकैया नायडू की बहु एम. राधा और तीन अन्य रिश्तेदारों के खिलाफ 22 करोड़ रुपये कमर्शियल टैक्स की चोरी का मामला दर्ज है। यह सभी अग्रिम जमानत पर हैं।** इनके शोरूम आर. एम. मोटर्स और एसोसिएट मोटर्स के पास हीरो होन्डा की डिलरशिप है और इन पर 1999–2005, तक का कमर्शियल टैक्स बाकी है। इन्होंने उपभोक्ताओं से तो टैक्स वसूल किये पर जमा नहीं कराया। **वाइजैग में मछली पालन और अपने पुश्तैनी गाँव में कई एकड़ ज़मीन ज़बर्दस्ती कब्ज़ा करने का अरोप भी वेंकैया नायडू पर है।**

भाजपा की मेनका गाँधी के कार्यकाल में केंद्रीय समाज कल्याण मंत्रालय में हुई सरकारी धन की बंदरबांट को लेकर **सीबीआई ने मेनका समेत तीन लोगों को अपनी जाँच के दायरे में ले लिया है।** सीबीआई के मुताबिक मेनका गाँधी के मंत्रालय के अधीन मौलाना आज़ाद एजुकेशन फांउडेशन द्वारा मेनका गाँधी के चुनाव क्षेत्र पीलीभीत में 95 फीसदी अनुदान मेनका की पार्टी के कार्यकर्ताओं और रिश्तेदारों में बाँटे गये। वाजपेयी सरकार ने इस रिपोर्ट को दबा दिया और मेनका गाँधी पर कोई एक्शन नहीं लिया। अक्टूबर 2005 को दिल्ली हाईकोर्ट ने सीबीआई को दोबारा जाँच करने और तीन महीने में रिपोर्ट देने का आर्डर दिया है। एजेंसी ने अब अपनी जाँच के दायरे में 1998–2001 के दौरान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय और मौलाना आज़ाद एजुकेशन ट्रस्ट द्वारा विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं को दिए गये अनुदान के मामलों को शामिल किया है। **इन मामलों में मेनका गाँधी की बहन अंबिका शुक्ला की संस्था गाँधी रूरल वेल्फेयर ट्रस्ट भी शामिल है।**

भाजपा–राजग के शासनकाल में केंद्रीय दूरसंचार मंत्री प्रमोद महाजन ने रिलायंस इंफोकॉम की डब्ल्यूएलएल सेवा को अनुमति दी थी। **प्रमोद महाजन पर आरोप है कि रिलायंस ने इसके लिये शुल्क नहीं दिया जिसकी वजह से सरकार को 1100 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ और असल फायदा पहुँचा महाजन को।** सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले की जाँच की माँग करने वाली एक याचिका पर केंद्र सरकार, केंद्रीय जाँच ब्यूरो (सीबीआई) और केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) को नोटिस जारी किये। रिलायंस इंफोकॉम ने दिल्ली की तीन कंपनियों के ज़रिये प्रमोद महाजन के पारिवारिक मित्र आशीष देवड़ा को एक रुपये कीमत के एक करोड़ शेयर जारी किये थे। याचिका में कहा गया है कि मीडिया में मामले के खुलासे के बाद रिलॉयंस ने 55 रुपये प्रति शेयर की दर से भुगतान कर देवड़ा से इन शेयरों को वापिस खरीद लिया था। याचिका में कहा गया है कि महाजन को ही इन शेयरों से फायदा पहुँचा क्योंकि देवड़ा की कंपनी आइओएल ब्रॉडबैन्ड प्रसार भारती को 5 करोड़ का भुगतान कर इंटीग्रल प्रोडक्शन प्राइवेट लिमिटेड (आईपीपीएल) को संकट से निकाल दिया। आईपीपीएल महाजन की पत्नी और पुत्र राहुल की कंपनी है। देवड़ा ने महाजन के दामाद के साथ मिलकर ही आईओएल की स्थापना की थी। इस तरह रिलायंस के शेयरों का लेन–देन देखते हुए साबित हो जाता है कि महाजन और उनके परिवार को ही इसका फायदा पहुँचा।

स्वामी विवेकानंद, आरएसएस संस्थापक डॉ. हेडगेवार और गुरु गोलवालकर का चित्र अपने ड्रांइगरूम में टाँगने वाले **भाजपा सांसद सुरेश चंदेल, छत्रपाल सिंह लोधा, प्रदीप गाँधी, वाई.जी. महाजन, चंद्रप्रताप सिंह और अन्ना साहब पाटील ने संसद में सवाल पूछने के लिये हज़ारों रुपयों की रिश्वत ली।** अन्ना साहब पाटील भाजपा राज में 2001–2004 तक ग्रामीण विकास राज्यमंत्री थे। इन सब के लिये जय श्री राम की जगह जय श्री रुपैया का नारा भाजपा के बदलते भ्रष्टाचारी रूप को सामने लाता है। इससे पहले भाजपा के अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण और छत्तीसगढ़ के जूदेव भी कैमरे में रिश्वत लेते हुए कैद हैं। पार्लियामेंट से इन सांसदों को निकाल दिया गया है। ये बात गौरतलब है कि रिश्वत लेते हुए सांसदों में सबसे ज़्यादा सांसद भाजपा के हैं।

लोकसभा ने भ्रष्ट सांसदों के निष्कासन का फैसला लिया तो नैतिकता और आचरण की दुहाई देने वाली भाजपा ने नैतिकता के लबादे पूरी तरह उतार फेंका। उसने न सिर्फ इस

प्रस्ताव का विरोध किया बल्कि इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने के बहाने लोकसभा से वॉकआउट भी किया। **आडवाणी का ये कहना कि प्रश्न पूछने के लिए सांसदों द्वारा घूस लेना एक बहुत छोटा अपराध है इसके लिये इतनी बड़ी सज़ा नहीं दी जानी चाहिये,** साबित करता है कि भाजपा के शीर्षस्थ नेता तक नैतिकता में विश्वास नहीं रखते। आडवाणी के इस कथन से मध्यवर्गीय मतदाता के बीच भाजपा की छवि को धक्का पहुँचा है जो अपने आप में एक अच्छी बात है।

भाजपा की संसदीय पार्टी के नेता और पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, जो अपने बयानों से मुकर जाने के लिये मशहूर हैं और हर बार अपनी राय बदलते हैं, **ने संसद में 30 साल पहले 15 नवम्बर 1974 को कहा था** ''लोगों को देखना होगा कि उनके द्वारा चुने प्रतिनिधि ठीक काम करते हैं या नहीं। वे चुने जाते हैं काम के लिये और काम के बजाय वे दाम इकट्ठा करते हैं तो जनता क्या मूकदर्शक रहे ? तुलमोहन रामजी भी जनता के प्रतिनिधि चुनकर आ जाएँ और खुलकर लाइसेंसों का घोटाला करें और हजारों रुपये खा जाएँ, संसद को बदनाम करें, तो जिस क्षेत्र की जनता ने तुलमोहन राम को भेजा है, क्या उसे उन्हें वापिस बुलाने का अधिकार नहीं होना चाहिये ? जनता के हाथों में कोई अधिकार रहेगा या नहीं या जनता 5 सालों तक चुप बैठी रहे ? लोकतंत्र केवल 5 सालों तक चुप बैठा रहे ? लोकतंत्र केवल 5 सालों में एक बार वोट देने के अधिकार का नाम नहीं है। **निर्वाचित प्रतिनिधि की जनता के प्रति जिम्मेदारी होनी चाहिए।'' यही अटल बिहारी, आडवाणी के बयान का समर्थन करते पाये गये।**

भाजपा शासित राज्यों में भाजपा के विधायक भी कम भ्रष्ट नहीं हैं। अपने को साफ–सुथरी और ईमानदार कहने वाली पार्टी भाजपा के खुद शासित राज्य झारखंड की सरकार में राजस्व और भूमि सुधार मंत्री चंद्र प्रकाश चौधरी के कोयले के कारोबार और सड़क निर्माण के धंधे से जुड़े रिश्तेदारों के घरों पर केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने छापे मारे और उन्हें भ्रष्टाचार से जुड़ा पाया। इन छापों में मंत्री के खिलाफ काफी सबूत मिले हैं। सीबीआई के मुताबिक एस. के. एम. इंटरप्राइज़ेज़ पर छापे में जो कागजात मिले उनसे पता चलता है कि सेंट्रल कोल्डफील्ड्स लिमिटेड के अधिकारियों ने इस निजी कंपनी को करोड़ों रुपयों का फायदा पहुँचाया और बदले में कमीशन खाया। मंत्री इस कंपनी से भी जुड़े हैं।

इसी तरह भाजपा शासित राजस्थान सरकार की मंत्रिपरिषद् के 29 सदस्यों में 11 पर तरह–तरह के मुकदमे चल रहे हैं। समाज कल्याण मंत्री मदन दिलावर पर सबसे ज्यादा 11 अपराधिक मामले चल रहे हैं। सार्वजनिक निर्माण मंत्री राजेंद्र सिंह राठौड़ पर सती महिमामंडन का मुकदमा चल रहा है। खान मंत्री लक्ष्मी नारायण दवे को घूस लेने के मामले में हाई कोर्ट ने नोटिस जारी किया है। हमेशा की तरह भाजपा का कहना है कि इन सबके खिलाफ आर्थिक या नैतिक अपराध से संबंधित मुकदमे नहीं चल रहे हैं। एक तरफ तो केंद्र में भाजपा दागी मंत्रियों के मुद्दे को लेकर पार्लियामेंट का कामकाज रोकती है और दूसरी तरफ राजस्थान में दागी मंत्रियों को बचाती है ये भाजपा के दोहरे चेहरे को उजागर करता है।

यदि न्यायालय का नज़रिया किसी सरकार के कामकाज का मापदंड हो तो राजस्थान की वसुंधरा राजे सरकार लगभग सभी मोर्चों में फिसड्डी साबित होगी। भाजपा सरकार के दो वर्ष के कार्यकाल में करीब 1300 अवमानना के मामले राजस्थान उच्च न्यायालय में विचाराधीन हैं। राज्य के वर्तमान और पूर्व मुख्य सचिव सहित पांच दर्जन से अधिक वरिष्ठ नौकरशाहों पर अवमानना के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने तगड़ा शिकंजा कस दिया है। अवमानना के विभिन्न प्रकरण निपटाने के लिए न्यायालय ने राज्य सरकार को दो माह का समय दिया है।

मध्य प्रदेश के नये मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के खिलाफ आरोप है कि उन्होंने चुनाव आयोग को दिये गये हलफनामे में उन अपराधिक मामलों को छुपाया जिनकी वजह से उनके खिलाफ गैर जमानती वारंट जारी किये गये थे। उनके मुख्यमंत्री बनने से कुछ ही दिन पहले उनके खिलाफ दायर किये गये मुकदमे राज्य सरकार ने वापिस ले लिये थे। ये अपने आप में चिंताजनक बात है क्योंकि राज्य सरकार के इस फैसले से कानून की प्रक्रिया रुक गयी।

लोकसभा चुनावों में हार के बाद भाजपा एक राजनीतिक पार्टी के तौर पर कमज़ोर हो रही है। कोलकाता और तिरुवनंतपुरम में भाजपा ने मुँह की खाई। आंध्र प्रदेश के स्थानीय निकायों और दिल्ली के दोनों विश्वविद्यालयों में भाजपा की करारी हार हुई। यही हाल उसका उत्तर प्रदेश के स्थानीय निकायों के चुनावों में हुआ। हरियाणा में भी भाजपा हारी। गुजरात में कुछ जीत ज़रूर मिली। हाल ही में हुए बिहार के चुनावों में भाजपा, जद (यू) के मुकाबले कमज़ोर हुई है। मतलब भाजपा चुनावों में लगातार जनाधार खो रही है।

एक तरफ भाजपा चुनावों में हार रही है और दूसरी तरफ पटना और भोपाल में असंतोष के स्वर उठे तो सही, पर एक गीदड़ भभकी से ज्यादा साबित नहीं हुए। पटना में विधायकों ने केंद्रीय नेतृत्व की पसन्द सुशील कुमार मोदी को चुना और भोपाल में उमा भारती के 100 से ज़्यादा समर्थकों ने शिवराज सिंह चौहान को चुना। आखिर में उमा भारती के साथ सिर्फ दो विधायक ही रह गये। भोपाल और पटना साबित करते हैं कि विधायकों द्वारा विरोध प्रदर्शन जो बाद में दबा दिया गया भाजपा का हमेशा का दावा और भी खोखला हो गया कि वो अनुशासित पार्टी और 'अलग तरह की पार्टी' है। आडवाणी का पाकिस्तान में जिन्ना के बारे में बयान और वाजपेयी द्वारा उसको समर्थन ये साफ बताता है कि वाजपेयी और आडवाणी दोनों ही भाजपा की विचारधारा के प्रति निष्ठावान नहीं हैं जो अपने आप में अनुशासनहीनता दिखाता है। साथ ही ये भी

दिखाता है कि भाजपा की कार्यकारिणी समिति में पार्टी की विचारधारा के प्रति निष्ठाहीन सदस्यों : वाजपेयी और आडवाणी को पार्टी से निलंबित तक करने की ताकत नहीं है। निष्कासन तो बहुत दूर की बात है। इसका दूसरा मतलब है कि पार्टी विचारधारा पर आधारित नहीं है बल्कि व्यक्ति विशेष पर आधारित है।

भाजपा का व्यवहार देखते हुए लगता है कि भाजपा के शीर्ष नेताओं से लेकर कार्यकर्ता तक कोई भी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। सभी सिद्धान्तविहीन राजनीति कर रहे हैं और पार्टी खामोश देख रही है। पार्टी के जनरल सेक्रेटरी चुप हैं। भाजपा की आर.एस.एस. द्वारा दी गयी विचारधारा के विरुद्ध पहल की पार्टी के अध्यक्ष आडवाणी ने, जब उन्होंने पाकिस्तान में अपने निजी दौरे के दौरान जिन्ना के बारे में बयान दिया। वाजपेयी ने अपनी दोहरे बोलने के चरित्र के मुताबिक पहले आडवाणी के बयान के बारे में नापसंदगी ज़ाहिर की फिर सुन्दर सिंह भंडारी की शोकसभा में जिन्ना के मामले में आडवाणी का समर्थन किया। पार्टी ने आडवाणी के खिलाफ कोई एक्शन नहीं लिया हालांकि वो पार्टी की विचारधारा के खिलाफ बोल रहे थे, और बोल भी रहे हैं। इसी तरह वाजपेयी के खिलाफ भी कोई कार्यवाही नहीं की गयी। आडवाणी का अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना, फिर वापिस लेना, झंडेवालन जाकर अपनी करनी पर पछतावा ज़ाहिर करना और फिर एक पुस्तक के लोकार्पण के समय कहना कि 'आज वे जो भी है आर.एस.एस. की वजह से हैं। आर.एस.एस. ने ही उन्हें संस्कार दिये हैं।' ये सब आडवाणी का चरित्र दिखा रहा है। खुराना की, जो आर.एस.एस. से पार्टी में आये हैं, पार्टी विरोधी काम करने और बयान देने के लिए, पहले उन्हें पार्टी से छह साल के लिये निकाला फिर उनके खेद प्रकट करने पर वापिस ले लिया गया। आडवाणी ने मध्य प्रदेश के दौरे पर जाने से पहले ये बयान दिया था कि खुराना का निष्कासन वापिस लेने के बजाए वो अपना इस्तीफा देना पसंद करेंगे। खुराना प्रकरण में एक बार फिर वाजपेयी की दोहरी बात कहने का चरित्र नज़र आया। खुराना के निष्कासन पर वाजपेयी ने आडवाणी को एक खत लिखकर यह बताया कि खुराना का निष्कासन गलत है और उन्हें एक मौका और देना चाहिये था। ये सब साबित करता है कि सत्ता से बाहर आने के बाद 'लौह पुरुष' और 'विकास पुरुष' दोनों ही भाजपा की विचारधारा के विरुद्ध काम कर रहे हैं। अनुशासन तोड़ने और विचारधारा से प्रतिबद्ध न होने के जुर्म में भाजपा ने उनके खिलाफ कोई एक्शन नहीं लिया। ज़ाहिर है पार्टी में रहने के लिये विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध रहना ज़रूरी नहीं है।

इसी तरह राजनीति के स्तर पर भाजपा–एनडीए का संसद और उसके बाहर यूपीए सरकार का विरोध बहुत ही ढुलमुल और ढीला रहा है। जनता और मतदाता से संबंधित मुद्दों को उठाने के बजाये भाजपा सनसनी पैदा करने वाले मुद्दे उठा रही है। जिन–जिन राज्यों में भाजपा राज कर रही है वहाँ अपने किये गये वादों और चुनाव के मैनीफेस्टो में किये गये वादों में से एक भी पूरा नहीं कर पायी है। मध्य प्रदेश में बिजली, सड़क, पानी के मुद्दे पर सत्ता में आयी भाजपा तीन सालों में कुछ भी नहीं कर पायी। सड़कों की हालत में कोई सुधार नहीं है। बिजली की आपूर्ति वैसी ही है और पानी की सप्लाई में कोई सुधार नहीं है। राजस्थान में बिजली और पानी को लेकर किसानों ने राज्यव्यापी आंदोलन किया जिसमें कई सौ किसानों को जेल में डाल दिया गया और उन पर पुलिस ने अत्याचार किया। छत्तीसगढ़ और झारखंड में भी विकास के नाम पर कोई प्रगति नहीं है। यही हाल गुजरात में है। कहने को तो शहरों में कारपोरेशनों में भाजपा सत्ता में है पर विकास के नाम पर कोई काम नहीं हो रहा है।

एक और बात भी सच है कि भाजपा अल्पसंख्यक, दलित और पिछड़ी जाति विरोधी पार्टी है। कहने को तो सुशील कुमार मोदी को भाजपा ने उप मुख्यमंत्री बना दिया पर जहाँ–जहाँ पिछड़ी जातियों के जनाधार वाले नेताओं से पाला पड़ा भाजपा ने उन्हें हाशिये पर डाल दिया। मिसाल के तौर पर कर्नाटक में पुदिरप्पा को भाजपा बर्दाशत नहीं कर पायी और न ही उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह को न्याय दे पायी। यही हाल उमा भारती के साथ किया है। कल्याण सिंह ने उमा भारती के निलम्बन की तीव्र आलोचना की है।

भाजपा की रजत जयंती के मौके पर मुम्बई में चल रही राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक के दौरान भाजपा के संगठन महामंत्री संजय जोशी पर यौन शोषण का गंभीर आरोप नतीजा अध्यक्ष के बाद सबसे महत्वपूर्ण समझे जाने वाले संगठन महामंत्री संजय जोशी को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। संजय जोशी को एक कथित वीडियो सीडी में आपत्तिजनक मुद्रा में दिखाया गया है। ये बात याद रखने की है कि संजय जोशी को आरएसएस ने भेजा था इसलिये संघ भी काफी शर्मसार महसूस कर रहा होगा। जैसा कि हमेशा होता है वेंकैया नायडू ने संजय जोशी पर लगे यौनाचार के आरोपों को बेबुनियाद बताया है। आरएसएस ने संजय जोशी को प्रचारक के पद से निलम्बित कर दिया है।

भाजपा के रजत जयंती समारोह के समापन के बाद एक बात तो साफ हो गयी कि भाजपा में किसी भी तरह का आत्ममंथन नहीं हुआ। इसकी वजह है कि भाजपा में बुनियादी सवालों, जैसे क्या आरएसएस की विचारधारा का आज की राजनीति में कोई महत्व है या फिर विचारधारा विहीन होना ही आज की ज़रूरत है ? क्यों भाजपा दूसरों की मदद से मिली सत्ता दोबारा हासलि नहीं कर पायी ? का जवाब ढूंढ़ने में भाजपा नाकाम रही। बाल आपटे का यह बयान कि ''हम राजनीति को बदलने के लिये राजनीति में आए लेकिन राजनीति ने ही हमें बदल दिया। अगर हम दूसरों से अलग नहीं हैं तो हमारी पार्टी का औचित्य ही क्या है'' यह ज़ाहिर करता है कि भाजपा किस हद तक गिर गयी है। अगर भाजपा विचारधारा के स्तर पर वैकल्पिक अर्थनीति, वैकल्पिक राष्ट्र दृष्टि और

विश्व दृष्टि नहीं दे सकती तो भाजपा का अस्तित्व राष्ट्रीय पार्टी के रूप में खत्म होना तय है।

रजत जयंती की पाँच दिवसीय अधिवेशन में अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार और सेक्स स्कैन्डल की छाप पूरी तरह देखी गयी। इसके बावजूद भी नेताओं को रामायण से राम, लक्ष्मण और हनुमान जैसे पात्रों का नाम देकर ये साबित करने की कोशिश की गयी कि भाजपा कांग्रेस–यू.पी.ए. सरकार रूपी लंका पर चढ़ाई को तैयार है। सच कहा जाये तो भाजपा की आधुनिक रामायण के राम वनवास का ऐलान कर चुके हैं, एक लक्ष्मण चिर मूर्च्छा में चले गये हैं और सारे हनुमान आरएसएस रूपी संजीवनी बूटी लाने में लगे हैं। अजीब नौटंकी चल रही है। हालांकि नेताओं को राम, लक्ष्मण और हनुमान की उपमा अपने आप में गलत है क्योंकि जो भी नेता आरएसएस के वंश से आता है उसे भरत ही माना जा सकता है। सबसे ज़्यादा मज़ेदार बात है कि भाजपा का कोई भी अध्यक्ष अपने आप को भरत मानने को तैयार नहीं है हालांकि असल में सभी आरएसएस रूपी दशरथ की पार्टी चलाते हैं।

अगर किसी को शक था कि भाजपा आरएसएस से अलग होकर अपनी नई पहचान विचारधारा के स्तर पर बनायेगी तो वो गलतफहमी भाजपा ने अपने रजत जयंती समारोह के समापन पर एक जारी संदेश में दूर कर दी। **भाजपा ने इस संदेश में कहा है कि समान नागरिक संहिता, अनुच्छेद 370 की समाप्ति, प्रलोभन से धर्मांतरण पर रोक लगाने, राम मंदिर निर्माण और गो–वध पर पूरा प्रतिबंध लगाने के लिये भाजपा आज भी प्रतिबद्ध है।** ये बात गौर करने की है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक और उसके बाद रजत जयंती समारोह के दौरान न तो अध्यक्षीय भाषण और न ही पास किये प्रस्तावों में इन विचारधारात्मक मुद्दों का उल्लेख है जबकि बीसियों सदस्यों ने राजनीतिक प्रस्ताव में इन विषयों को शामिल करने के संशोधन पेश किये थे। इसी तरह से रजत जयंती संदेश में अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचार से दूर रहने पर ज़ोर दिया गया। ये बात सोचने की है कि जो मुद्दे राजनीतिक प्रस्ताव में होने चाहिये थे या आचार संहिता का हिस्सा होने चाहिये थे उन्हें सिर्फ संदेश का हिस्सा बनाकर भाजपा ने अपने हमदर्दों, समर्थकों और पार्टी कैडर को गुमराह कर दिया है जो अपने आप में शुभ संकेत है। ये सब साबित करता है कि भाजपा में आंतरिक लोकतंत्र का नहीं तानाशाही का राज है वरना राष्ट्रीयकारिणी अपने अध्यक्ष को अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचार की समर्थन देने के मुद्दे पर कब का पार्टी से निष्कासित कर चुकी होती।

भाजपा के नये अध्यक्ष राजनाथ सिंह आरएसएस द्वारा मान्य और स्वीकृत हैं और भाजपा को हिंदुत्व की तरफ ले जायेंगे। अध्यक्ष बनते ही उन्होंने कहा कि हिंदुओं के लिये अयोध्या का वही स्थान है जो मुसलमानों के लिये मक्का–मदीना का है। इससे साफ ज़ाहिर है कि राजनाथ सिंह आरएसएस के नये भरत हैं। ज़ाहिर है आरएसएस की एकानुवर्ती प्रणाली जातियों के आपसी संघर्षों को तेज करेगी। ये भाजपा में अराजकता और अनुशासनहीनता बढ़ायेगी। इसलिये सिंह का ये कहना कि अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचार से भाजपा कोई समझौता नहीं करेगी, ये तार्किक और भरोसे के काबिल नहीं लगता। **मतलब भाजपा अपने दोहरे चरित्र को बनाये रखेगी जो अपने आप में अच्छे संकेत हैं। वामपंथी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक ताकतों को इस मौके का भरपूर फायदा उठाना चाहिये और जनांदोलनों के माध्यम से अपना जनाधार बढ़ाना चाहिये।**

पृष्ठ 12 का शेष.....

विदेश विभाग और लेफ्टिनेंट कर्नल बॉयलान की बदकिस्मती यह थी कि **फील्ड आर्टिलरी** नामक एक विभागीय सैन्य पत्रिका में इस बात का काफी पुख्ता और बेबाक खुलासा किया जा चुका था कि ऑपरेशन फेंटम फ्यूरी में सफेद फॉस्फोरस के जरिए लोगों को जान–बूझकर निशाना बनाया गया था। इसमें तीन सिपाहियों का भी हवाला दिया गया था। "सफेद फॉस्फोरस एक असरदार और विविधतापूर्ण हथियार था। दो जगह हमने अपनी पंक्तियों को छिपाने के लिए और बाद में मनोवैज्ञानिक हथियार के तौर पर बागी लड़ाकों पर इस हथियार का इस्तेमाल किया। जहां हम उच्च विस्फोटकों के जरिए भी उन तक नहीं पहुंच सकते थे वहां हमने इसी हथियार का सहारा लिया। हमने बागियों को तबाह करने के लिए पहले सफेद फॉस्फोरस और बाद में उच्च विस्फोटकों का इस्तेमाल किया।"

पिछले दो सालों में दुनिया इस बात की गवाह रही है कि अमेरिका ने कितनी आसानी से एक के बाद एक तमाम सभ्य कायदे–कानून तोड़ दिए हैं। सबसे पहले उसने अनिश्चितकालीन हिरासत के बारे में प्रचलित मान्यताओं और पूर्वाग्रहों को खत्म किया। उसके बाद युद्धबंदियों की यातना और सामूहिक दंड का रास्ता अपनाया और अंत में उसने गैर–आनुपातिक बल प्रयोग पर लगे प्रतिबंध को तार–तार कर दिया। इसके बाद भी अमेरिका नहीं माना और उसने घनी आबादी वाले ऐसे इलाकों में हथियारों का बेतहाशा इस्तेमाल किया जहां असैनिक नागरिक भी हथियारों का निशाना बन सकते थे। इंसानी बर्बरता की मिसाल बन चुके गुएर्निका जैसे शहीद शहरों की फेहरिस्त में शामिल फल्लुजा में अमेरिका ने हैवानियत की एक और सरहद पार कर दी है। लेकिन इस अपराध को दस्तावेजों में दर्ज करने की किसी पोल वॉल्कर को फुर्सत नहीं है।

इराक से कुछ जहरीली सच्चाइयां

सिद्धार्थ वरदराजन

कहानी : "सुबह नापाम की खुशबू मिल जाए तो दिल खुश हो जाता है।" लेफ्टिनेंट कर्नल विलियम किलगोर *एपोकेलिप्स नाऊ,* 1979, में।

अकहानी : "लड़ाई के अंत में हमने उन कुछ चीजों के बारे में नए सिरे से सोचा जिन पर हमें बड़ा फख्र था। इस फेहरिस्त में सबसे पहले जो चीज हमारे ज़हन में आई वो थे पैदल टुकड़ी और टैंक पलटनों के सार्जेंट... जो हमें बता रहे थे कि हमारे तोपखाने और मोर्टारों का कोई मुकाबला नहीं था। दिन ढलते–ढलते हमारे बिरादरों को यह समझ में आने लगा था कि हमें 'जंग का बादशाह' क्यों कहा जाता है। सारी बात का मर्म इसी में था।" कैप्टेन जेम्स टी. कॉब, फर्स्ट लेफ्टिनेंट क्रिस्टोफर ए. लाकूर और सार्जेंट विलियम एच. हाइट "दि फाइट फॉर फल्लुजा", फील्ड आर्टिलरी मैगज़ीन, 2005 में। (जो बेजोड़ मोर्टार दागे गए उनमें सफेद फॉस्फोरस के रासायनिक हथियार भी शामिल थे)।

दूसरे महायुद्ध के बाद समुद्र में हजारों पौंड रासायनिक हथियार फेंकने वाले अमेरिका को अस्सी के दशक में अपनी इस हरकत के पर्यावरणीय परिणामों की चिंता सताने लगी। इसके बाद अमेरिका ने जहां–जहां भी इस तरह से विस्फोटक या युद्धक सामान फेंके थे उनकी एक फेहरिस्त तैयार की ताकि भविष्य में उन जगहों का अध्ययन किया जा सके।

यह बात एक रिपोर्ट से सामने आई। आर्मी कैमिकल मैटीरियल्स एजेंसी से जुड़े विलियम आर. ब्रॉंकोविट्ज़ द्वारा लिखी गई इस रिपोर्ट का शीर्षक है "समरी ऑफ सम कैमिकल म्यूनिशंस सी डम्प्स बाई दि यूनाइटेड स्टेट्स।" आंतरिक प्रसार के लिये तैयार की गई इस रिपोर्ट को 30 जनवरी 1989 को छापा गया था। इस रिपोर्ट में 50 से ज्यादा ऐसी घटनाओं का ब्यौरा दिया गया है जब अमेरिका ने समुद्र में मस्टर्ड गैस, लेविसाइट और अन्य खतरनाक रासायनिक पदार्थ समुद्र में फेंके हैं। इनमें दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं। एक, 14 सितंबर से 21 दिसंबर 1945 के बीच मैरीलैंड स्थित ऐजवुड शस्त्र भंडार से 924 कनस्तर सफेद फॉस्फोरस क्लस्टर बम निकाल कर उन्हें एटलांटिक समुद्र में फेंक दिया गया। उनके साथ ही सफेद फॉस्फोरस धुएं के कनस्तर और स्मोक प्रोजेक्टाइल्स तथा आर्सेनिक ट्राइक्लोराइड की भी एक बड़ी तादाद समुद्र में फेंकी गई। दूसरा, 18 जून 1962 को सफेद फॉस्फोरस युक्त 5252 हथियार अटलांटिक में फेंक दिए गए। इनके साथ मस्टर्ड प्रोजक्टाइल, 20 ड्रम साइनाइड और 4,21,157 पौंड रेडियोधर्मी कचरा भी समुद्र में बहा दिया गया। मार्च 2001 में "ऑफशोर डिस्पोजल ऑफ कैमिकल एजेंट्स एंड वैपंस कंडक्टेड बाई दि यूनाइटेड स्टेट्स" के नाम से एक और रिपोर्ट तैयार की गई। आबेरदिन प्रूविंग ग्राउंड स्थित अमेरिकी सेना अनुसंधान, विकास एवं इंजीनियरिंग कमान कार्यालय की हिस्टॉरिकल रिसर्च एंड रिस्पॉंस टीम द्वारा तैयार की गई इस रिपोर्ट में भी उपरोक्त जानकारियों की पुष्टि हुई है।

ये रिपोर्टें अपने आप में काफी उल्लेखनीय हैं। इनसे हमें पता चलता है कि जहां तक अमेरिकी फौजों के अपने शस्त्र भंडारों का सवाल है, वहां सफेद फॉस्फोरस को 1989 और 2001 तक भी "रासायनिक हथियार" या "रासायनिक पदार्थ एवं हथियार" के रूप में वर्गीकृत किया जाता रहा है। सफेद फॉस्फोरस को 1945 और 1962 में समुद्र में फेंका गया लेकिन अमेरिकी फौजें इसके खतरों से पांच दशक बाद भी पूरी तरह सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रही हैं।

सवाल यह है कि जब किसी हथियार को 1945 में भी समुंदर में फेंकने के लिहाज से सही नहीं माना जाता था तो उसी को साठ साल बाद इराक में फल्लुजा के लोगों पर बरसाना कैसे सही माना जा सकता है ? और अगर पेंटागन का मानना है कि इसमें कोई हर्जा नहीं है तो भला वही पेंटागन यह कैसे कह सकता है कि सफेद फॉस्फोरस रासायनिक हथियार नहीं होता ?

व्यापक संहार के हथियारों की वजह से पैदा हो रहे खतरों से निपटने के लिए अमेरिका ने जो मुहिम छेड़ी है, उसमें रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल का आरोप सबसे पहले इटली के राई टेलीविजन चैनल ने लगाया था। पिछले साल नवंबर में फल्लुजा पर अमेरिकी फौजों ने जो चौतरफा हमला बोला था उसी घेरेबंदी पर सिगफ्रिडो रानूची और मॉरिज़ियो तोरिएल्ता ने एक वृत्तचित्र तैयार किया है। भूतपूर्व अमेरिकी सैनिकों का हवाला देते हुए इस वृत्तचित्र में अमेरिका को सफेद फॉस्फोरस के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल का दोषी ठहराया गया है और इस हथियार से मनुष्यों पर जो खतरनाक असर पैदा होते हैं उसकी भयावह तस्वीरें और ब्यौरे दिए हैं। इस हथियार का निशाना बनने वालों में बहुत सारे आम नागरिक थे। फौजी मामलों की वेबसाइट globalsecurity.org के मुताबिक सफेद फॉस्फोरस से शरीर में "बड़ी पीड़ादायक जलन पैदा होती है। यह जलन आमतौर पर पीले रंग के चकत्तों के रूप में उभरती है और उससे लहसुन जैसी गंध आती है। सफेद फॉस्फोरस बेहद घुलनशील पदार्थ होता है। माना जाता है कि यह त्वचा में बहुत तेजी से फैलता है।" कुल मिला कर यह रसायन मानव शरीर को इस तरह जला देता है कि शरीर खत्म हो जाता है लेकिन शरीर पर मौजूद कपड़ों पर एक शिकन भी दिखाई नहीं

देती। इटली के इस वृत्तचित्र में यही दिखाया गया है।

वृत्तचित्र में मॉरिज़ियो तोरिएल्ता ने ऑर्गेनाइजेशन फॉर दि प्रोहिबिशन ऑफ कैमिकल वैपन्स के प्रवक्ता पीटर केसर से पूछा कि क्या सफेद फॉस्फोरस निषिद्ध पदार्थों की श्रेणी में आता है ? "जी नहीं, सफेद फॉस्फोरस को युद्ध कार्यों के विषय में पारित की गई रासायनिक शस्त्र संधि के तहत प्रतिबंधित घोषित नहीं किया गया है – बशर्ते उसका इस्तेमाल उसके जहरीले गुणों की वजह से न किया जा रहा हो। मिसाल के तौर पर, सफेद फॉस्फोरस का इस्तेमाल आमतौर पर धुएं के बम बनाने के लिए किया जाता है ताकि धुएं की आड़ में सैनिक टुकड़ियों की आवाजाही को छिपाया जा सके। इस इस्तेमाल में कोई हर्जा नहीं है। लेकिन अगर सफेद फॉस्फोरस के विषैले या खतरनाक गुणों का हथियारों के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है तो ऐसा करना प्रतिबंधित है।"

मैंने **गूगल न्यूज़** पर यह जानने की कोशिश की कि अमेरिकी मीडिया इन आरोपों के बारे में क्या रवैया अपनाता है। मैंने पाया कि **बोस्टन ग्लोब** और **क्रिश्चियन साइंस मॉनीटर** को छोड़कर "मुख्यधारा" के एक भी अमेरिकी अखबार ने इस खबर को छापने की जरूरत नहीं समझी। कुछ अखबारों ने पेंटागन की तरफ से इस आशय का खंडन जरूर छाप दिया कि अमेरिका ने गैरकानूनी हथियारों का इस्तेमाल नहीं किया है। लेकिन ज्यादातर अखबार इस मुद्दे पर पूरी तरह खामोश नजर आए। जहां तक मेरी जानकारी है, **डेली प्रेस,** न्यूपोर्ट वर्जीनिया ने भी फल्लुजा के बारे में लगाए जा रहे आरोपों को छापना जरूरी नहीं समझा। **डेली प्रेस** ही वह अखबार था जिसकी तफ्तीश की वजह से चीज़ापीक खाड़ी में सफेद फॉस्फोरस की खतरनाक भूमिगत सुरंगें दुनिया की जानकारी में आई थीं और उपरोक्त दोनों फौजी रिपोर्टों को सार्वजनिक रूप से जारी किया गया था।

किसी देश को जंग में हरा देने का एक अतिरिक्त फायदा यह होता है कि विजेताओं को न केवल अपने ढंग का इंसाफ थोपने का मौका मिल जाता है बल्कि वह अपने हिसाब से खाते–बही का भी हिसाब रख सकते हैं। पॉल वॉल्कर और सीआईए द्वारा चलाए जा रहे चॉर्ल्स ड्वेल्फर के इराक सर्वे ग्रुप की मेहरबानी से अब हमें मालूम है कि इराक के लिए चलाए गए 'तेल के बदले भोजन' कार्यक्रम के खातों में कितना पैसा गया और उसका क्या हश्र हुआ। पर हमें इस बात का कोई इल्म नहीं है कि अमेरिकी हमलों में कितने इराकी नागरिक मारे गए हैं। जनरल टॉमी फ्रेंक ने अपनी मशहूर उक्ति में कहा था, "हम अर्थियां नहीं गिनते" और न ही इस बात का पता रखते हैं कि लोग कैसे मरे या कैसे मर रहे हैं। न्यूरेमबर्ग के बाद तमाम आक्रमणकारी इस बात की अहमियत जान चुके हैं कि लेखा–जोखा रखने में ढील–ढाल के क्या–क्या फायदे होते हैं।

जब पिछले साल दिसंबर में पहली बार यह बात सामने आई कि फल्लुजा में रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल किया गया है तो अमेरिकी विदेश विभाग इन खबरों का खंडन करने के लिए फौरन मोर्चे पर डट गया। 9 दिसंबर 2004 को विदेश विभाग के अंतर्राष्ट्रीय सूचना कार्यक्रम विभाग की ओर से मंत्रालय की वेबसाइट पर "आइडेंटिफाइंग मिसइन्फॉर्मेशन" (अफवाहों की शिनाख्त) शीर्षक के तहत यह जानकारी दी गई : "कुछ खबरों में दावा किया गया है कि अमेरिकी सैनिकों ने फालूजा में 'गैरकानूनी' घोषित की जा चुकी फॉस्फोरस के खोलों का इस्तेमाल किया है। फॉस्फोरस के खोल गैरकानूनी नहीं होते। वैसे भी अमेरिकी फौजों ने फल्लुजा में जब–तब रोशनी के लिए इन खोलों का इस्तेमाल जरूर किया है लेकिन इसके अलावा उनका कोई इस्तेमाल नहीं हुआ। रात में कभी–कभी शत्रु पंक्तियों को पहचानने के लिए हवा में इन खोलों को उछाला जाता था लेकिन दुश्मन लड़ाकों पर उन्हें कभी नहीं फेंका गया।"

विदेश विभाग की प्रतिक्रिया बहुत संतुलित और सोच–समझ कर दी गई थी क्योंकि रासायनिक शस्त्र संधि – जिस पर अमेरिकी सरकार भी हस्ताक्षर कर चुकी है – में सफेद फॉस्फोरस के इस्तेमाल को गैरकानूनी घोषित नहीं किया गया है बशर्ते उसका इस्तेमाल दुश्मन पंक्तियों की निशानदेही करने के लिए उजाला करने या अपनी पंक्तियों को छुपाने के लिए धुंआ पैदा करने तक सीमित हो। लेकिन सीधे आम इंसानों पर निशाना साध कर एक हथियार के रूप में इस पदार्थ का इस्तेमाल करना गैरकानूनी माना जाता है क्योंकि रासायनिक शस्त्र संधि (सीडब्ल्यूसी) में "ऐसा कोई भी रसायन, जो जीवन प्रक्रियाओं पर रासायनिक क्रिया करके मृत्यु, वक्ती अक्षमता या स्थायी क्षति" का कारण बन सकता है, प्रतिबंधित है। अमेरिकी फौजी कमान और जनरल स्टाफ कॉलेज, फोर्ड लीवनवर्थ द्वारा जुलाई 1999 में प्रकाशित की गई एसटी100–3 बैटल बुक के अध्याय 5 में कहा गया है कि "बर्स्टर किस्म का सफेद फॉस्फोरस (डब्ल्यूपी एम–11082) जले हुए घाव के चारों तरफ जम जाता है और उससे बहुत तेज जलन होती है। उसमें से घना सफेद धुआं निकलता है। इस पदार्थ को भारी तादाद में धुआं पैदा करने के लिए या वास्तविक निशानों, जैसे क्लास–5 साइट्स या लॉजिस्टिक साइट्स के खिलाफ भी इस्तेमाल किया जा सकता है। **मनुष्यों के खिलाफ सफेद फॉस्फोरस का इस्तेमाल करना देश के कानूनों का उल्लंघन होगा।"**

जिस दिन इतालवी वृत्तचित्र प्रसारित होने वाला था उसी दिन इराक में अमेरिकी सेना के प्रवक्ता लेफ्टिनेंट कर्नल स्टीव बॉयलान ने स्वीकार किया कि फल्लुजा में एक सहायक साधन के रूप में सफेद फॉस्फोरस का इस्तेमाल किया गया है। लेकिन, नेशनल पब्लिक रेडियो पर एमी गुडमैन से बात करते हुए उन्होंने कहा कि "मुझे ऐसा कोई उदाहरण मालूम नहीं है जिनमें लोगों को सफेद फॉस्फोरस के जरिए जानबूझ कर निशाना बनाया गया हो।"

शेष पृष्ठ 10 पर.....

सांप्रदायिक हिंसा का जवाब

सिद्धार्थ नारायण

मनमोहन सिंह सरकार ने हाल ही में सांप्रदायिक हिंसा (निरोध, नियंत्रण एवं पुनर्वास) विधेयक संसद के सामने पेश किया है। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) सरकार ने अपने साझा न्यूनतम कार्यक्रम में आश्वासन दिया था कि वह "सांप्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए एक आदर्श समग्र कानून पारित" करेंगे। क्या यह आश्वासन इस विधेयक से पूरा होता दिखाई दे रहा है?

इस तरह के कानून की मांग सांप्रदायिक हिंसा के दौरान कई राज्य सरकारों की भूमिका और तौर–तरीकों की वजह से पैदा हुई थी। दिल्ली में 1984 में सिखों के खिलाफ हुई संगठित हिंसा की जांच के लिए बनाए गए न्यायमूर्ति नानावती जांच आयोग ने पाया कि ये हमले "बहुत सुनियोजित ढंग से हुए थे और हमलावरों को पुलिस का भय नहीं था"। दंगों में सरकार को कटघरे में खड़ा करते हुए रिपोर्ट में कहा गया है कि जो सिलसिला शुरुआत में छुटपुट आवेशपूर्ण कार्रवाइयों से शुरू हुआ था वह जल्दी ही "सुनियोजित जनसंहार" में तब्दील हो गया।

सांप्रदायिक हिंसा में सरकार की मिलीभगत के बारे में नानावती आयोग की यह टिप्पणी 1993 के मुंबई दंगों और 2002 के 'गुजरात में जाति सफाए' पर केंद्रित असंख्य जांच रिपोर्टों में व्यक्त किए गए निष्कर्षों से मिलती–जुलती दिखाई देती है।

सांप्रदायिक हिंसा विधेयक इन चिंताओं को संबोधित करता दिखाई नहीं देता। इस विधेयक में कहा गया है कि अगर किसी इलाके में हिंसा का ढर्रा और स्तर इस तरह का है कि उसमें किसी समूह, जाति या समुदाय के खिलाफ आपराधिक बल प्रयोग किया जा रहा है और उसकी वजह से जान या माल की हानि होती है तो राज्य सरकार उस इलाके को "सांप्रदायिक रूप से अशांत" घोषित कर सकती है। किसी इलाके को "सांप्रदायिक रूप से अशांत" घोषित करने के लिए जरूरी है कि वहां हो रही हिंसा विभिन्न समूहों, जातियों या समुदायों के बीच "शत्रुता की भावना, घृणा या दुर्भावना" पैदा करने के लिए की जा रही हो। विधेयक में यह भी प्रावधान किया गया है कि किसी इलाके को "सांप्रदायिक रूप से अशांत" घोषित करने के लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना जरूरी है कि "अगर फौरन कदम नहीं उठाए गए" तो देश के "धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने, एकता, अखंडता, या आंतरिक सुरक्षा" को खतरा पैदा हो सकता है।

विधेयक में कहा गया है कि यदि किसी परिस्थिति में केंद्र सरकार राज्य सरकार की कार्रवाई से संतुष्ट नहीं है तो वह हिंसा को कुचलने के लिए इस ओर राज्य सरकार का "ध्यान आकर्षित" करा सकती है और उसे आवश्यक निर्देश दे सकती है। अगर राज्य सरकार उसके निर्देशों का पालन न करे तो केंद्र सरकार उस इलाके को "सांप्रदायिक रूप से अशांत" घोषित कर सकती है। लेकिन 'गुजरात में जाति सफाए' के दौरान यही समस्या तो पैदा हुई थी। उस वक्त वाजपेयी सरकार ने संविधान के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से इनकार कर दिया था। संविधान की धारा 355 के अनुसार, यह सुनिश्चित करना केंद्र सरकार का दायित्व है कि "प्रत्येक राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप संचालित किया जाए।"

इस प्रावधान को संविधान की सांतवीं अनुसूची में दी गई केंद्रीय सूची की प्रविष्टि 2ए के साथ पढ़ा जाना चाहिए। प्रविष्टि 2ए में केंद्र सरकार को अधिकार दिया गया है कि वह कानून–व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य सरकार की सहायता हेतु सशस्त्र बलों को वहां तैनात कर सकती है। हालांकि इस प्रावधान की व्याख्या पर विवाद रहे हैं लेकिन जानकारों का मानना है कि गुजरात जैसे हालात में उसका इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

विधेयक में यह प्रावधान भी नहीं किया गया है कि सरकारी अधिकारियों को भी सांप्रदायिक हिंसा के दौरान उनकी कार्रवाइयों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए। हालांकि विधेयक में सरकारी कर्मचारियों के दायित्वों और उनके त्रुटियों को तो परिभाषित किया गया है लेकिन इसके बावजूद यह विधेयक भी उन्हें दंडित करने के लिए राज्य सरकार की अनुमति के दायरे से बाहर नहीं निकालता। अगर किसी सरकारी कर्मचारी को इस बात का दोषी पाया जाता है कि उसने "अपने विधिसम्मत अधिकारों का दुर्भावनापूर्वक इस तरह प्रयोग किया है जिससे किसी व्यक्ति या संपत्ति को हानि पहुंची है या पहुंच सकती है" तो उसे साल भर तक की सजा दी जा सकती है। विधेयक के तहत अगर कोई सरकारी कर्मचारी "अपने विधिसम्मत अधिकारों व शक्तियों का जान–बूझकर प्रयोग नहीं करता है" और इस प्रकार "समुदाय के लिए अनिवार्य सेवाओं एवं आपूर्तियों की निरंतरता में रुकावट या सार्वजनिक व्यवस्था को भंग या सांप्रदायिक हिंसा को रोक पाने में विफल हो जाता है" तो उसे दंडित किया जा सकता है।

विधेयक में प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज करने से इनकार करना, अपराधों की जांच और दोषियों के खिलाफ मुकदमा दायर करने और पीड़ितों को सुरक्षा प्रदान कर पाने में विफलता को पुलिस अधिकारियों की अयोग्यता के रूप में परिभाषित किया गया है। विधेयक में कहा गया है कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत अनुमति के लिए दिए गए आवेदन पर राज्य सरकार को 30 दिन के भीतर फैसला ले लेना चाहिए। लेकिन अगर राज्य सरकार किसी अधिकारी के खिलाफ कार्रवाई करने से संबंधित आवेदन को खारिज कर देती है तो इस प्रावधान का कोई मतलब नहीं रह जाएगा।

अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व

प्रस्तावित विधेयक अंतर्राष्ट्रीय संधियों के प्रति भारत सरकार

की प्रतिबद्धता के अनुरूप दिखाई नहीं देता। भारत सरकार जनसंहारक अपराध निरोध एवं दंड कनवेंशन पर हस्ताक्षर कर चुकी है। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों की ज़िम्मेदारी है कि वह जनसंहार के दोषी व्यक्तियों को दंडित करें फिर भले ही वह "संवैधानिक रूप से उत्तरदायी शासक", सरकारी अधिकारी या कोई अन्य व्यक्ति ही क्यों न हों।

नागरिक समाज संगठनों की तरफ से इस आशय का एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया है कि 'जनसंहार' के अपराध को परिभाषित किया जाए और निरपवाद रूप से सभी व्यक्तियों को उसके दायरे में लाया जाए। इसका मतलब यह होगा कि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत बहुत सारे अधिकारियों को जो सुरक्षा मिली हुई है वह अप्रासंगिक हो जाएगी और न्याय प्रक्रिया में संप्रभु दंडमुक्ति और विशेषाधिकार का अधिकार निरस्त हो जाएगा। इस परिभाषा के तहत उन अधिकारियों को भी दोषी ठहराया जा सकेगा जिनके तहत काम करने वाले अधिकारियों या व्यक्तियों ने कोई अपराध किया है।

यह विधेयक देश की न्याय व्यवस्था से जुड़े व्यापक मुद्दों को संबोधित करता दिखाई नहीं देता। सरकारी पक्ष के पक्षपातपूर्ण रवैये, जांच प्रक्रिया में मौजूद खामियों और पारदर्शी मुकदमे के अभाव जैसी समस्याओं को इसमें संबोधित नहीं किया गया है। 1977 में पुलिस व्यवस्था में सुधारों पर विचार करने के लिए नियुक्त किए गए राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने 1978 से 1981 के बीच आठ रिपोर्टें तैयार की थीं।

इन रिपोर्टों में पुलिस के कामकाज में राजनीतिक दखलंदाजी पर अंकुश लगाने, पुलिस हिरासत में यंत्रणा की घटनाओं को कम करने और पुलिसकर्मियों को अपने कृत्यों के लिए उत्तरदायी ठहराने के बारे में कई सुझाव दिए गए थे। पुलिसकर्मियों को उत्तरदायी ठहराने के लिए सुझाव दिया गया था कि उनके खिलाफ मुकदमे चलाने की छूट दी जाए। गृह मंत्रालय ने इन सुझावों को लागू करने के बजाय एक और समीक्षा समिति का गठन करके इन रिपोर्टों को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

विधि आयोग तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी आपराधिक न्याय व्यवस्था में सुधार के बारे में कई सुझाव दिए हैं जिन्हें अब तक लागू नहीं किया गया है। सांप्रदायिक हिंसा के हालात से निपटने के लिए पारित किए गए किसी कानून के साथ–साथ अगर पुलिस व्यवस्था और आपराधिक न्याय व्यवस्था में भी सुधार नहीं किए जाएंगे तो ऐसे कानून का अपने आप में कोई खास मतलब नहीं रह जाएगा।

–'दी हिन्दू' इंगलिश दैनिक से साभार

भारतीय संविधान के प्रति प्रतिबद्धता

डॉ. योगेश भटनागर

भारतीय संविधान भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य करार देता है। इसका मतलब है कि राज्य को सभी धर्मों से बराबर की दूरी रखने के साथ–साथ हम एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में अपने समाज को 'रेशनल' और 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' (साईंटिफिक व्यूपॉइन्ट) से संपन्न करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। पर अभी हाल ही में दिल्ली में 400 करोड़ रुपये से बनाये गये अक्षरधाम मंदिर के उद्घाटन समारोह में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की आडवाणी के साथ शिरकत इस बात की तरफ इशारा करता है कि राष्ट्र के कर्णधारों के लिये अब धर्मनिरपेक्षता का अर्थ हर धर्म और संप्रदाय को, उसके राजनैतिक असर को देखते हुए, बढ़ावा देना भर होकर रह गया है। एल. के. आडवाणी का इस समारोह में आना समझ में आता है। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कारखानों और बाँधों को आधुनिक भारत के मंदिर कहा था जिसका मतलब था कि देश को मंदिरों की ज़रूरत नहीं है। आंकड़े बताते है कि आज भी समस्याएं और चुनौती वही हैं जो पचास साल पहले थीं मतलब बेरोज़गार, निरक्षर, भूखे लोगों की संख्या अगर ज़्यादा नहीं है तो कम भी नहीं है। कांग्रेस पार्टी जो आम आदमी' के वोट पर राज कर रही है क्या इसके प्रधानमंत्री ने संवैधानिक जिम्मेदारी निभायी ? जवाब नहीं में है।

एनडीए–भाजपा द्वारा बनाये गये राष्ट्रपति वैसे तो वैज्ञानिक हैं और जिस तरह का ज्ञान और संदेश वो अपने भाषणों में स्कूली बच्चों से लेकर वैज्ञानिकों को देते हैं उनसे दिखता है कि वो 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' का मतलब समझते हैं। अंधविश्वासों और धार्मिक कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं रखते। वो ये भी जानते हैं कि धर्म हमारे समाज में किस तरह के तनाव और टकराव पैदा कर रहा है। गोधरा के बाद गुजरात जनसंहार और उनके ही शासन काल में मऊ (उत्तर प्रदेश) में सांप्रदायिक दंगों का मतलब वो अच्छी तरह से समझते हैं। ऐसे में धर्मनिरपेक्ष राज्य के राष्ट्रपति का इस तरह के समारोह में शामिल होने का मतलब देश के पहले नागरिक द्वारा संविधान का उल्लंघन तो है ही साथ ही हिंदुत्ववादी ताकतों को वैद्यता प्रदान करना भी है। वैज्ञानिक राष्ट्रपति ने मंदिर के उद्घाटन पर कहा कि **"विज्ञान और आध्यात्म यहां मिलकर राष्ट्र की बेहतरी के लिये काम कर रहे हैं।" पर सच तो यह है कि यहां प्रौद्योगिकी धार्मिक अंधविश्वासों से मिलकर जड़ता और अवैज्ञानिकता को बढ़ावा दे रही है।**

अगर एक सच को और देखें तो राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की इस समारोह में शिरकत गहरे सोच और चिंता का विषय बन जाती है। अक्षरधाम मंदिर किसी हिंदू देवता का मंदिर नहीं बल्कि उसके एक छोटे संप्रदाय का मंदिर है जो ज़्यादातर गुजरात तक ही सीमित है। इस मंदिर के अधिष्ठाता देव स्वामीनारायण है जिसने यह संप्रदाय 18 वीं सदी में शुरू किया था। इस संप्रदाय के मानने वाले लंदन और दिल्ली में ज़्यादा हैं। इस मंदिर को बनाने वाला संप्रदाय कितना प्रतिक्रियावादी है वो इस बात से साबित होता है कि यहां स्त्री पुरुष चाहे उनके बीच कोई भी रिश्ता हो साथ नहीं जा सकते। पुजारी स्त्रियों का मुंह नही देखता क्योंकि इस संप्रदाय के मुताबिक स्त्रियां पाप की जड़ होती हैं। इसके अलावा गुजरात में ही गुजरात पुलिस ने इस संप्रदाय के कुछ साधुओं को इस आरोप में पकड़ा था कि वे साधु महिलाओं से दुष्कर्म करके उनकी सीडी बाज़ार में बेचते थे। पिछले साल इसी संप्रदाय के चार साधुओं को अपने एक साथी गजाधरानन्द की हत्या के आरोप में नड़ियाद की एक अदालत ने मृत्युदंड की सज़ा दी थी।

इस तरह के प्रतिक्रियावादी और अपराधिक संप्रदाय के मंदिर का उद्घाटन करने गये राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री निश्चित तौर पर प्रतिक्रियावादी और कट्टरवादी ताकतों के साथ खड़े नज़र आते हैं जो संविधान की अवहेलना के साथ–साथ धर्मनिरपेक्ष ताकतों को निश्चित तौर पर कमज़ोर बनाता है। ये गहन चिंता का विषय है।

बाज़ारीकरण – एक चेहरा

आदियोग

वैलेनटाइन डे पर क्या देखा ? मुहब्बत का सोडावाटरी जुनून देखा और जिसमें मुहब्बत के परचम से ज़्यादा बाज़ार का धमाल देखा। आशिकी के लिए साज़ो–सामान और सहूलियतों का एक से बढ़ कर एक उम्दा इंतज़ाम देखा। शोरशराबे और गाजेबाजे के साथ मुहब्बत के मियादी बुखार को चढ़ते और उतरते देखा, उसके ताप को क्लाइमेक्स पर पहुंचते देखा। मुहब्बत के इज़हार का रिमोट कंट्रोल हाथ में लिए बाज़ार का कमाल देखा। देखा कि लोगों की जेब खाली करवा लेने में बाज़ार ने कितनी महारत हासिल कर ली है, कि मुनाफे की लूट के लिए भी अपना जौहर दिखाने, भारतीय उर्फ हिन्दू नाम देकर उत्पात–उपद्रव मचाने का एक और बहाना है। देखा कि एक तरफ सपनों और ज़ज़्बात के सौदागर हैं तो दूसरी तरफ धर्म और संस्कृति के बाज़ीगर। देखा कि खालिस मुनाफे के लिए वैलेनटाइन डे का महिमा मंडन और उसका तर्कहीन खंडन करने वाली धुर विरोधी पंक्तियां किस तरह एक–दूसरे की पूरक हैं और प्रेरक भी हैं। देखा कि दमड़ी है तो सब कुछ है, वैलेनटाइन डे भी है। देखा कि साहिर ने कितना सही कहा था कि 'इक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल, हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक।' मुहब्बत धन–दौलत की मोहताज नहीं होती, लेकिन वैलेनटाइन डे के विज्ञापनों और आयोजनों को जैसे यह उद्घोषणा करते देखा कि प्यार अब दमड़ी खर्च करने की हैसियत में व्यक्त होगा। इस बार फिर मुहब्बत के जश्न में मुहब्बत की ही तौहीन का मंज़र देखा, मुहब्बत के इज़हार को बाज़ार के हवाले देखा। यह कहना और ज़्यादा सही होगा कि वैलेनटाइन डे के नाम पर संत वैलेनटाइन के शर्मिंदा और दुखी हो जाने का पक्का इंतज़ाम देखा।

वैलेनटाइन डे यानी फटाफट और तैयारशुदा मुहब्बत का दिन। किस्म–किस्म की मुहब्बत के ज़ज्बों के रंग बिखरने में माहिर मुनव्वर राना का यह शेर पुराना पड़ गया लगता है कि 'गुफ्तगू पर हो जाती है अक्सर/अब किसी घर पर कबूतर नहीं फेंके जाते।' फोन कहां जनाब, अब तो मोबाइल–इंटरनेट का जमाना है। लुकाछिपी के लंबे और पेचीदा खेल का जमाना लद गया। संचार की दुनिया बेतार के झंडे गाड़ रही है, तमाम झंझटों को बाइ–बाइ करते हुए घुमंतू हो रही है, अपने दिलकश और हैरतअंगेज़ कारनामों से गुज़र रही है। साथ ही इस कहावत को भी आज़मा दे रही है कि सर मुंडाते ही ओले पड़े और यह सच शीशे की तरह साफ है कि टेकनॉलॉजी मानव समाज और प्रकृति के मंगल से कम, उसके अमंगल की कामना में ज़्यादा व्यस्त है। वह सबसे पहले खूब भरे पेटवालों की सेवा में है, उनकी मौज–मस्ती और ऐशो–आराम के इंतज़ाम में जुटी है, भले ही कुदरत और उसका संतुलन जाये भाड़ में, लोकतंत्र और इंसाफ जाये गटर में। दुनिया के पैमाने पर ताकत के फलसफे का दबदबा है और टेकनॉलॉजी भी इससे अछूती नहीं है। आलम यह कि जो टेकनॉलॉजी सुविधा के लिए थी, अब वही भारी मुसीबत का सबब बन रही है, अपराध के आसान और सस्ते औज़ार में तब्दील हो रही है। टेकनॉलॉजी का जयकारा है कि जो है, उसका इस्तेमाल करो, काम खतम तो कूड़े में फेंक दो। यह टेकनॉलॉजी में बाज़ार के दखल का नतीजा है और बाज़ार के हाथ में हर चीज, हर शै बिकाऊ है, तो मुहब्बत का अहसास भी बिकाऊ है और वैलेनटाइन डे सबसे पहले इस बाज़ार का नाम है। बाज़ार की 'इनायत' है कि मुहब्बत के इज़हार की तारीख भी तय हो गयी––चौदह फरवरी माने वैलेनटाइन डे और बाज़ार का मैनेजमेंट देखिये कि वैलेनटाइन डे के इतिहास–भूगोल से बेखबर बस भेड़ चाल दीवानगी है, मानो लूट–मुनाफे का चोखा, चांदी ही चांदी है। तो बाज़ार वह महाबली है जो हर मामले में दखल दे सकता है, अपना रुतबा–दबदबा कायम कर सकता है। वैलेनटाइन डे दरअसल, बाज़ार की मुनादी है कि प्यार–मुहब्बत की क्या औकात, बाज़ार की महिमा अपरम्पार। देखिये न अब प्यार के मैदान में भी बाज़ार का सिक्का।

दुनिया के ज़्यादातर त्यौहारों और उत्सवों की जड़ें इतिहास में कम और मिथकों में ज़्यादा नज़र आती हैं। उनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को खोज पाना आम तौर पर अंधी सुरंग में हाथ–पैर मारना ही हुआ करता है। होली–दीवाली की तरह वैलेनटाइन डे भी किंवदंतियों का पिटारा है और संत वैलेनटाइन को लेकर प्रचलित किस्से–कहानियाँ को लेकर संशय और मतभेद बरकरार है। लेकिन हां, संत वैलेनटाइन की छवि ज़रूर मुहब्बत के सिपहसालार की है––जो मुहब्बत की राह में रोड़ा बनी वर्जनाओं को तोड़ता है, जोखिम मोल लेता है, हालात के सामने घुटने नहीं टेकता और अंतिम सांस तक मुहब्बत की पैरोकारी करता है। तो वैलेनटाइन डे प्रेम के निश्छल और निर्भीक पुजारी की स्मृति और सम्मान है। इस कोण से देखें तो वैलेनटाइन डे मुहब्बत करने के अधिकार की वकालत करने वालों, बड़े–बूढ़ों और गुरु–अभिभावकों के लिए प्रेम के पक्ष में खड़े होने के संकल्प दिवस के तौर पर उभरता है, प्रेम और प्रेमियों के प्रति अपनी शुभ चिंता, साथ और सहयोग दर्शाने के पर्व का आकार लेता है। लेकिन बाज़ार को संत वैलेनटाइन की शहादत के मर्म और महत्व से और वैलेनटाइन डे के विरोधियों को सभ्यता–संस्कृति से क्या लेना–देना ? दोनों छोर

पर अतिवाद है और अजब–गजब यह कि दोनों छोर जैसे इक–दूजे के लिए हैं। गौर करें कि वैलेनटाइन डे का बीज तब छिटका, जब भूमंडलीकरण उर्फ भूबाज़ारीकरण ने रफ्तार पकड़ी, देशी–विदेशी कंपनियां अपने उत्पादों–सेवाओं की खपत और मुनाफा लूटने की नयी–नयी तिकड़मों और तरकीबों की खोज में जुटीं। मुहब्बत मुनाफे की लूट के निशाने पर आ गयी या कहें कि वैलेनटाइन डे की डुगडुगी पिट गयी और इसी दौरान सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बकवास का हमलावर झंडा बुलंद किये गये जाने की भी शुरुआत हुई।

दरअसल, इस उत्तर आधुनिक युग में वैलेनटाइन डे अपने आप में उलटबांसी है। चौतरफा प्रेम के खिलाफ उन्माद भरा माहौल है, प्रेम के सामने किस्म–किस्म की दीवारें और बंदिशें हैं, खतरों और पहरों के बीच घिरा हुआ है प्रेम। प्रेम करके पूरी ज़िंदगी एक साथ गुज़ारने का अपनी मर्ज़ी से लिया गया दो लोगों का खूबसूरत फैसला दूर–दराज़ के गांव ही नहीं, बड़े शहरों तक में अभी भी बड़ा गुनाह है और कहीं–कहीं उसकी सज़ा मौत है, परंपरा और इज्ज़त के नाम पर प्रेम और प्रेमियों की बलि है। मर्दवाद की एक फुफकार, बलात्कार या तेजाब कांड भी है कि 'मैं तुम्हें कुबूल करूँ'। मुहब्बत को सबसे बड़ा खतरा मुहब्बत के स्वांग से है, जहां 'आशिकी' की निगाहें मुहब्बत का इतिहास पढ़ने के बजाय भूगोल को घूरती–लपकती हैं, मौका मिले कि चिड़िया हलाल। मीडिया की भी दिलचस्पी सनसनी तलाशने और उसे लगातार परोसने की रहती है। नतीजे में भय और भ्रम पैदा होता है और जो प्रेम को संदेह और घृणा के कोहरे में फेंक देता है। लेकिन प्रेम तो प्रेम है, वह खुद अपना विलोम कैसे हो सकता है। मानव है तो प्रेम है और प्रेम है तो मानव है, प्रेम नहीं तो यह दुनिया भी नहीं। तभी तो भले प्रेम का नज़रिया बदला, लेकिन प्रेम का भाव नहीं। इसके ठीक उलट हिकारत में, झिड़की में या कि धमकी में प्रेमी के लिए यह जुमला आम है कि 'बड़े मजनूं बने फिरते हो।' मजनूं ने अपने ज़माने में राजसत्ता को चुनौती देने तथा आध्यात्म के नये मायने गढ़ने का बहादुराना जोखिम उठाया, लेकिन इस चरित्र को इतना घिसा गया कि आज मजनूं और मनचले के बीच का फर्क नदारद है, अब वह दिल फेंक आदत का पर्याय भर है। यह मजनूं तो जैसे गालिब के इस शेर से उपजता है कि 'रगों में दौड़ने–फिरने के हम नहीं कायल, जो आंख ही से न टपका वो लहू क्या है' और बगावत करता है जड़ परंपराओं और भोथरे मूल्यों के खिलाफ––वह तो मुहब्बत के इनसानी जज़्बे की हिफाज़त का सिपहसालार है। वह प्रेम में अधिकार जताने का नहीं, अपना फर्ज़ निभाने का पैगाम ले कर लोक कथाओं, गीतों, रूपकों का किरदार बनता है। यह चिंता की बात है कि इधर इस लोक नायक के साथ छेड़खानी करने का जैसे रिवाज़ बन गया है। विकास की तूफानी दौड़ के बीच मजनूं आज भी गुनहगार है, सजा का हकदार है––पुलिस की नज़रों से लेकर मीडिया की खबरों तक में।

वैलेनटाइन डे का झंडा ऊंचा हो रहा है और मुहब्बत का रुतबा उतना ही घट रहा है। आज भी ज़्यादातर समाजों में मुहब्बत अकेली और उदास, नापाक और अछूत हैसियत में रहती है, ज़िल्लत और बदनामी झेलती है। दूसरी ओर मुहब्बत के नाम एक से बढ़ कर एक तामझाम है। कहें कि मुहब्बत के मामले में 'हिंदुस्तान' और 'इंडिया' के बीच बंटवारा हो गया है। इस बिना पर वैलेनटाइन डे को ज़रूर कटघरे में खड़ा किया जाना चाहिए। लेकिन कुतर्कों से, धमकी और ताकत की लाठी से लोगों को हांकने–हड़काने का अधिकार किसी को नहीं है। यह तो मानवाधिकारों के अपहरण और लोकतांत्रिक मूल्यों के सर्वनाश का रास्ता है। वैलेनटाइन डे के विरोध में पिछले कई सालों से मच रहे होहल्ले–हुड़दंग की खबरों और तस्वीरों को कैसे भूला जा सकता है, जब संस्कृति के अनपढ़ और उजड्ड थानेदार कुम्भ के मेले में शाही स्नान को जाते नागा बाबाओं के नग्न जुलूस की याद दिलाते हुए सड़कों पर उतरे–कि लड़कों के चेहरे पर कालिख पोती जा रही है, उन्हें पीटा जा रहा है, मुर्गा बनाया जा रहा है, लड़कियों की बीच शहर में परेड करायी जा रही है, लड़की से लड़के को जबरन राखी बंधवायी जा रही है–रेस्त्रां और पार्कों में, फिल्म हाल और सड़कों पर जोड़ों को अपमानित किया जा रहा है, उन्हें गालियों से नवाज़ा जा रहा है, दुकानों को तोड़फोड़ का निशाना बनाया जा रहा है।

फूहड़ फतवा जारी किया जा रहा है कि लड़कियां, लड़कियों की तरह रहें, लड़कों से दूर रहें, मिलें तो केवल रक्षाबंधन और भइया दूज पर। और हेकड़ी देखिये कि यह असांस्कृतिक कुकृत्य भारतीय उर्फ हिंदू संस्कृति को बचाने के लिए है, उसे अपमानित–प्रदूषित करने और विदेशी संस्कृति थोपने की साजिश का प्रतिरोध करने के लिए है। इस झरोखे से नंगई और गुंडई पर टिके तथाकथित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निहतार्थ को करीने से समझा जा सकता है। इतिहास–दर्शन से लेकर कला–संस्कृति जैसे संवेदनशील और जटिल मामलों में भी जबरन चौधरी बन जाने की यह सीख वहीं से तो मिली है, जहां से वैलेनटाइन डे का वैश्वीकरण हुआ और वह लाभ–हानि के बहीखाते में सिमट गया। तो भी उपभोक्तावादी बाज़ार के वैलेनटाइन डे नामक इस उत्पाद की रौनक और उसके मियादी बुखार में कमी नहीं, जबरदस्त बढ़त ही हुई, शहरी और अब तो कस्बाई मध्यवर्ग की भी उसके निशानों पर यहाँ भी, लड़ना होता है, तो बैरी ज़माने या ज़ालिम उसूलों के बीच भी अंखिया लड़ ही जाती हैं। प्यार वह मासूम सोता है, जो तपते रेगिस्तान में भी फूट सकता है, सख्त चट्टानों को फोड़ सकता है, उफनते समुंदर में भी लहरा सकता है। मुहब्बत की तमाम कामयाब या नाकामयाब, खुशनुमा या दर्दभरी, कही या अनकही, ऐतिहासिक या मिथकीय दास्तान यही गवाही पेश करती है। शीरी–फरहाद, सोहिनी–महिवाल, हीर–रांझा, पारो–देवदास, लैला–मजनूं जैसे किरदार मुहब्बत के मासूम पुजारी और ज़बरदस्त योद्धा हैं, इन्साफ और इन्सानियत की राह पर हैं और यही ज़िंदादिल संस्कृति की खासियत है।

संस्कृति के असांस्कृतिक दरोगाओं को यह कौन समझाये?

क्या त्रासदी है कि एक तरफ भूख है, अभाव है, बीमारी है, बेकारी है, अशिक्षा है, लाचारी है, घनघोर अंधेरा है, ज़िंदगी गोया नरक से बदतर है, जिंदा रहने का सवाल सुरसा के मुंह की तरह बस फैलता ही जा रहा है और दूसरी तरफ ज़िंदगी गोया स्वर्ग से बेहतर है, बटन दबाते और पलक झपकते हर चीज हाज़िर है। लूट–मुनाफे के लिए मौका चाहिए तो मदर्स डे, फादर्स डे, फ्रेंडशिप डे वगेरह की कड़ी में वैलेनटाइन डे भी है। यह कैसे मुमकिन है कि प्रेम जैसी सतत् प्रक्रिया किसी खास दिन के हवाले हो जाये? प्रेम करने की आज़ादी के नाम पर इस बाज़ारू अनुष्ठान का क्या मतलब? प्रेम के लिए तो कोई भी दिन, कोई भी मौसम, कोई भी पल खास हो सकता है। सच्ची चाहत को महंगे तोहफों और लकदक जगहों की क्या दरकार? वैलेनटाइन डे के मुरीदों को समझना होगा कि संत वैलेनटाइन प्रेम के प्रतीक हो सकते हैं, वैलेनटाइन डे हर्गिज़ नहीं। ठीक वैसे ही जैसे गुलाब का फूल प्रेम का प्रतीक हो सकता है, उसका पर्याय कभी नहीं। क्या तीज़–त्यौहारों और राष्ट्रीय पर्वों की तरह मुहब्बत की नदी को कलेंडर की किसी तारीख में बांधा जा सकता है। ? मुहब्बत की सेहत के लिए क्या यह ठीक होगा? क्या कबीर की बानी को गांठ बांधने के दिन लद गये कि 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, भया न पंडित कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होय।'

वैलेनटाइन डे का जादुई जुनून ठंडार उतर चुका है और उसके विरोध का नगाड़ा भी खामोश है, कहीं और बजने –धमकने की तैयारी में है। ज़रूरत वैलेनटाइन डे नामक मुहब्बत के वायरस और उसकी बेसुरी–बेताला दस्तक की चीर फाड़ किये जाने की है। इसके लिए चिकित्सा शास्त्र के इस ककहरे को ध्यान में रखना बेहद ज़रूरी है कि बुखार खुद में कोई रोग नहीं होता, लेकिन किसी रोग का लक्षण ज़रूर हुआ करता है और कोई कमी या खराबी ही रोग को पैदा करती है। रोग अपना रंग दिखाने की औकात में तब आते हैं, जब तन–मन उसका मुकाबला करने की ताकत खोने लगता है। परंपराओं के संदर्भ में भी यही विज्ञान लागू होता है कि बुढ़ा जाना या खत्म हो जाना कोई रोग नहीं, अक्षम या निष्क्रिय हो जाने का नतीजा है। इस रौशनी में ही वैलेनटाइन डे के समर्थन और उसके विरोध के औचित्य पर विचार किया जाना चाहिए। सोचा जाना चाहिए कि हमारी नयी पीढ़ी वैलेनटाइन डे को हाथों हाथ क्यों उठा रही है। शायद इसलिए कि हमारे समाज ने जिंदगी से प्रेम को बेदखल कर दिया है। ऐसे में वैलेनटाइन डे प्रेम के लिए जगह बनाता है। जगह आप नही देंगे तो इसका यह मतलब नहीं कि लोग जगह पाने की मानवीय इच्छा को पीछे ढकेल देंगे। वैलेनटाइन डे पर हमला तभी तार्किक सिद्ध होगा, जब प्रेम बंधनों और निषेधों की लक्ष्मण रेखाओं से मुक्त होगा। वैलेनटाइन डे के उपभोक्तावादी स्वरूप का विरोध वाजिब है, लेकिन प्रेम के विरोध को कतई इजाज़त नहीं दी जा सकती। नहीं भूला जाना चाहिए कि प्रेम करने या न करने की आज़ादी व्यक्ति को दूसरे मोर्चे पर भी आज़ाद बनाती है। ठीक बात है कि प्यार किया तो डरना क्या? और यह भी सच है कि मुहब्बत की तमाम सुनी–अनसुनी कहानियां गालिब के इस बयान की तसदीक करती हैं कि इश्क माने 'इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।' अब इसमें नये ज़माने का ताज़ा सवाल है कि दरिया की शक्ल–सूरत क्या है, उसमें कितना इश्क है और कितना इश्क के नाम फरेब। इसी से तय होना है कि दरिया सबसे पहले खुद डूबने का नाम है या कि दूसरे को डुबोने का नाम? यह मजनूं और मनचले के बीच का, सच और झूठ का, आशिकी और फरेब का फर्क है। वरना मुहब्बत नाम की फुदकती–उड़ती हसीन चिड़िया तो मुश्किलों से जूझने–टकराने और बदकिस्मती को अंगूठा दिखाने का हौसला भरती है, ज़िंदगी को ज़िंदगी की तरह जिये जाने का सपना दिखाती है, उसका रास्ता सुझाती है। लेकिन हां, साहिर के शब्दों में कहें तो इतना ध्यान जरूर रहे कि 'भूख और प्यास की मारी हुई इस दुनिया में इश्क ही एक हकीकत नहीं कुछ और भी है।'

प्यार

जैसे गुनगुन सावन में झूलना, पेंग लेना
जैसे बारिश में होहल्ला मचाते भीगना
जैसे भरी दोपहरी बरगद तले सुस्ताना
जैसे सर्दी में आंख मूंदे धूप खाना
जैसे बिटिया के मासूम बहानों से हार जाना
जैसे सेंताक्लाज की भूमिका चुपचाप अदा कर जाना
जैसे पुताई के बाद घर का नया हो जाना
जैसे किसी ढ़ाबे में किसी रामू से बतकही करना
जैसे चिड़चिड़ी चाची से थोड़ा दिल्लगी करना
जैसे दूर मडय्या में दिये का टिमटिमाना
जैसे किसी बच्चे का रोते–रोते हंस देना
जैसे ओस में फूल–पत्तियों का घुल जाना
जैसे चूल्हा फूंकती मां की आंखों का लाल हो जाना
जैसे पुरानी चिट्ठियां, राखियां सहेज कर रखना
जैसे गुज़री यादों के जज़ीरे में भंग पीना
जैसे न रहने पर अफसानों की तरह रहना
जैसे धड़कनों की ताल पर हौसलों का गीत गाना
जैसे चाय के संग गोलियाई रोटियां गटक जाना
जैसे हाथ की लकीरों को यूं अंगूठा दिखाना
जैसे उनकी नज़रों से भी दुनिया को देखना
जैसे बिखरे मोतियों का एक धागे से जुड़ना
जैसे खुले आसमान में परिंदों का बेखौफ उड़ना
जैसे घुप्प अंधेरी रात में जुगनुओं को खोजना
जैसे गीत गाते घना जंगल पार कर जाना

शेष पृष्ठ 5 पर.....

भारतीय नृत्य शैलियां

श्रुति चतुर्वेदी

भारत का प्रत्येक क्षेत्र सामाजिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक, प्राकृतिक, भौगोलिक आदि पक्षों में भिन्न होने के बावजूद भी एक एकात्मकता रखता है। सच है हर क्षेत्र की अपनी अलग खासियत है व अलग समस्याएं हैं। हर क्षेत्र में तनाव है, विचारों में मतभेद हैं, एक–दूसरे के काम करने के तरीकों में मतभेद हैं। तनाव है सत्ता पक्ष की नीतियों और आम इंसान की ज़रूरतों में। स्वयं को श्रेष्ठ व दूसरे को नीचा दिखाना, विभिन्नताओं को स्वीकार करने के बजाय उन्हें बदलने अथवा अपने जैसा बनाने का प्रयास, यह रवैया हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। चाहे वह राजनीति हो, तकनीक हो, संस्कृति हो या कोई अन्य क्षेत्र। इन तनावों से कला भी अछूती नहीं है। मतभेद इस बात पर कि कौन–सी कला श्रेष्ठ है गायन, वादन, नृत्य, या थियेटर। अब सवाल ये उठता है कि किसी भी कला के श्रेष्ठ होने का मापदण्ड क्या है ? यह कौन तय करेगा कि एक प्रकार की कला दूसरे की तुलना में श्रेष्ठ है ? यह विवाद कि शास्त्रीय कलाऐं लोक कलाओं से श्रेष्ठ हैं, और लोक कलाऐं शास्त्रीय कलाओं के मुकाबले आम इंसान के जीवन के ज्यादा करीब हैं, देखा जाए तो यह सारे विवाद बेबुनियाद, खोखले और अनावश्यक हैं।

कोई भी कला चाहे वह जीवित हो या हमारे अतीत का हिस्सा दरअसल वह आम इंसानों के जीवन से ही उपजी है। वह उसके व्यवहार, संवेदना और जीवनयापन के तरीकों का ही प्रतिबिम्ब है।

जैसे–जैसे मनुष्य सभ्यता की ओर बढ़ा वैसे–वैसे इन कलाओं में भी परिपक्वता और निखार आया। तमाम कलाएं एक दूसरे पर निर्भर हैं, परस्पर संबंद्ध है और एक दूसरे के बिना इसका पनपना और निखरना नामुमकिन है। हर तरह की कला समय व समाज के साथ बदलती है और स्वयं को उक्त परिवेश में ढ़ाल लेती है। चाहे वह लोक कला हो या शास्त्रीय कला। कला कभी भी ठहरती नहीं है। कला अपने समय और युग का प्रतिबिंब और उसकी प्रतिनिधि होती है। यही कारण है चाहे वह आदि मानव हो या आधुनिक युग का इंसान, कलाएं उसके जीवन का केंद्र बिंदु रही हैं।

किसी भी कला को श्रेष्ठ घोषित करने में न सिर्फ इतिहास को बल्कि सामाजिक व राजनैतिक घटनाओं का भी ध्यान रखना चाहिए। देखा गया है कि समाज के उच्च वर्ग, मुख्यतः ब्राह्मण वर्ग और उनके सौंदर्य बोध ने नृत्य शैलियों को श्रेष्ठ होने का दर्जा दिया। यह मानकर चलना चाहिए कि समाज का उच्च वर्ग, जो कि सबसे ज़्यादा शिक्षित व संभ्रांत वर्ग होता है उनका सौंदर्यबोध आम लोगों से भिन्न होगा ही। इसके साथ–साथ इस कुलीन वर्ग का प्रभाव सत्ता पक्ष पर होने की वजह से कला का सामाजिक और राजनैतिक स्थान भी यही कुलीन वर्ग तय करता है। इसका साफ मतलब यह है कि जब हम किसी नृत्य शैली के स्वरूप और परंपरा की बात करते हैं तो हम उसके साथ जुड़ी सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की भी बात करते हैं। हमारे समाज में ब्राह्मण वाद के आधार पर अपनी श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए, समाज के कुलीन और संभ्रांत वर्ग ने कला को भी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का माध्यम बनाया। आम इंसान की कला को उसके प्राकृतिक परिवेश से उठाकर एक ऐसे स्तर पर पहुंचाया जिसका स्वामित्व सिर्फ उच्चतम वर्ग के हाथों में हो। परिणामस्वरूप जिस कला में कलाकार व दर्शक में कोई अंतर नहीं था, जहां साझेपन की अनुभूति होती थी वहीं कलाकार और दर्शक में अंतर आया और कला को उपभोग की वस्तु के रूप में पेश किया जाने लगा। सामाजिक, ऐतिहासिक, पारम्परिक बदलाव की वजह से कला के रूपों को भी कई उतार–चढ़ाव झेलने पड़े।

आइये देखते हैं भारतीय नृत्य किस तरह हमारी साझी विरासत का हिस्सा है

भारत की विभिन्न कलाएं, वेश–भूषा, खान–पान, भाषाएं, पर्व, त्योहार, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां व परम्पराएं हमारी साझी विरासत के कई पक्षों में से हैं। साझी विरासत के इन पक्षों का निर्माण इंसान ने अपने लिए और समाज को आपस में जोड़ने के लिए किया। यह सारे पक्ष हमारी आम दिनचर्या का हिस्सा हैं। साझी विरासत के इन रूपों को हम प्रतिदिन, प्रति पल जीते हैं। यह पक्ष हमें आपस में जोड़ते हैं। हमें तनाव और तनाव से फायदा उठाने वाले तत्वों का सामना करने की सामर्थ्य देते हैं। साझी विरासत का एक ऐसा ही पक्ष है नृत्य।

नृत्य व संगीत प्राचीन काल से इंसान के जीवन का अटूट हिस्सा रहा है। एक मान्यता के अनुसार शब्दों की ईजाद से पहले संकेत और मुद्राओं के माध्यम से इंसान ने अपने भाव जैसे प्रेम, वात्सल्य, क्रोध, भय, दया आदि की अभिव्यक्ति नृत्य, संगीत व चित्रों के ज़रिये की। यह कलाएं हमारे जीवन में इतना घुल मिल जाती हैं कि, हमें यह आभास भी नहीं होता कि हम साझी विरासत जी ही नहीं रहे हैं बल्कि इसे और विकसित कर रहे हैं। बदलते मौसम, त्यौहार हम आपस में मिलकर मनाते हैं। फसल काटना, सावन का आना, नई फसल बोना, इन सबका हमारे जीवन में महत्व है और हम इसकी अभिव्यक्ति संगीत, नृत्य, नाटक व अन्य कलाओं के माध्यम से करते हैं। हर इलाके की अपनी एक खास शैली होती है व

अपना अलग पहनावा व खान–पान होता है। शादी–ब्याह, सगाई, जन्म आदि को संगीत नाटक, नृत्य के माध्यम से सामूहिक रूप से मनाते हैं। नृत्य, समाज व इंसान का अभिन्न अंग है। इस कला में अपने शरीर के माध्यम से इंसान अपनी बात कहता है। लय, ताल व सुरों में पिरोकर वह अपनी बात अपने सम्पूर्ण शरीर के माध्यम से लोगों तक पहुंचता है। जहां एक ओर लोक नृत्य में सरलता व सहजता होती है वहीं शास्त्रीय नृत्यों में शैलीगत भाव भंगिमाओं का वर्चस्व होता है। लोक और शास्त्रीय नृत्य दोनों ही आम इंसान के जीवन काल की गाथा बताते हैं। लोक नृत्य परम्परा एवं शास्त्रीय नृत्य परम्परा न सिर्फ इतने सालों से जीवित है, बल्कि अपनी अंदरूनी शक्ति व सजीवता से कला को नए रूप देने में सक्षम है यानि कि लोक व शास्त्रीय कलाएं अलग–अलग नहीं हैं बल्कि आपस में संबंधित हैं। कोई ऐसा क्षेत्र, वादी, समुद्री तट या ज़मीन नहीं है जिसका अपना लोक नृत्य और संगीत न हो। जैसे :

- कश्मीर के वत्तल कबीले का **दुमहल**
- पूरे उत्तर प्रदेश में **रासलीला** का मंचन किया जाता है।
- उत्तरांचल के कुमाऊँ क्षेत्र में बरसात के मौसम में धान, मडुवा आदि के गुड़ाई–निराई के दौरान **हुड़का बौल** गाया जाता है। हुड़का का अर्थ है डमरू। डमरू ही एक मात्र वाद्य यंत्र है जो कि इसके दौरान बजाया जाता है। किसान समूह में एक साथ गाते–बजाते हैं और ताल के साथ–साथ नाचते हैं।
- कुमाऊँ का **छोलिया** नृत्य शादी के दौरान पुरुषों द्वारा तलवार और ढाल लेके समूह में किया जाता है।
- आन्ध्र प्रदेश के लम्बाडी कबीले का **लम्बाडी** नृत्य जो उनकी आम दिनचर्या का हिस्सा है।
- तमिलनाडु के लोक नृत्य **कुम्मी** व **कोलाट्म**।
- तमिलनाडु की ही एक और नृत्य शैली है **करगम**। इसमें कच्चे चावल से भरा मटका, जिसके इर्द गिर्द बांस की पत्तियां होती हैं, को सरों पर संतुलित करते हुए नृत्य करना होता है।
- कर्नाटक का **डोलू कुनीथा**, जिसमें आदमी बड़े ढ़ोलों की थाप पर नृत्य करते हैं।
- गुजरात का **गरबा** जो नवरात्रों के दौरान मूलतः महिलाओं का नृत्य है। नवरात्रि को अम्बा देवी के सम्मान में महिलाएं तालियों की थाप पर घेरों में नृत्य करती हैं। यही नृत्य जब पुरुष करते हैं तो उसे गरबा कहा जाता है।
- पंजाब का उर्जापूर्ण **भांगड़ा** जो कि बैसाखी त्योहार पर आदमियों द्वारा नाचा जाता है।
- पंजाब का लोकनृत्य **गिद्दा** महिलाओं की शैली है। इस शैली में महिलाएं समूहों में नृत्य करती हैं लेकिन अक्सर एक या दो महिलाएं बीच में आकर नृत्य करती हैं और अन्य तालियों की थाप देती हैं।
- राजस्थान का **डांडिया** जो आदमियों और महिलाओं द्वारा लंबी डंडियों के साथ–खेला जाता है।
- मणिपुर का **ढ़ोल चोलम** जिसमें पुरूष बड़े–बड़े ढ़ोलों (मणिपुरी मृदंग या पुंग) के साथ–साथ घेरे में चक्कर लगाते हुए उछल–उछल कर नाट्य–नृत्य के करतब दिखाते हैं।
- सैन्य अंदाज के हाव भाव पर आधारित **छऊ** नृत्य की तीन शैलियां **सरायकेला** (बिहार), **पुरूलिया** (पश्चिमी बंगाल) और **मयूरभंज** (उड़ीसा) में पनपी और पली बढ़ी। मुखौटों के विस्तृत और व्यापक इस्तेमाल के कारण छऊ नृत्य शैलियों को 'छाया', 'बहरूप' या फिर 'शौर्य छवि' के रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है।
- असम का **बीहू** नृत्य। बीहू उत्सव मध्य अप्रैल में फसल की कटाई के दौरान मनाया जाता है। इस उत्सव में बच्चे, बूढ़े, गरीब, अमीर सभी उत्साह के साथ नृत्य करते है। ढोल और 'पाइप' (एक तरह की बासुरी) बजायी जाती है और मुख्यतः प्रेमगीत गाए जाते हैं। बीहू नृत्य आम तौर पर घेरे में या 'पैरलल लाईन्स' में किया जाता है।
- **कोडियट्टम** केरल के चकयार समुदाय की नृत्य शैली है। कोडियट्टम प्राचीन संस्कृत नाट्य विद्या से निकली शैलियों की सबसे पुरानी शैली मानी जाती है। इसका रिश्ता नाट्यशास्त्र से भी जुड़ता है क्योंकि इसमें भी 'डबल रोल', कहानी के अंदर कहानी, और चेहरे और शरीर की मुद्राएं नाट्यशास्त्र की तर्ज़ पर ही होती है।

नृत्य कलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक विकास के अनुसार तीन वर्गों में बांटा जा सकता है; आदिवासी, लोक, पारम्परिक नृत्य। मूलतः यह कलाएं सरल होती हैं व आम दिनचर्या के इर्द–गिर्द घूमती हैं। पुरूष, महिलाएं व बच्चे सामूहिक नृत्य के माध्यम से हर पर्व व मौसम को हर्ष और उल्लास के साथ मनाते हैं। यहां कलाकार और दर्शक में कोई अंतर नही होता, सब इसका हिस्सा होते हैं, सहभागी और सृजनकर्ता होते हैं। कश्मीर, हिमाचल, उत्तर प्रदेश या फिर पूर्व और उत्तर पूर्व के पहाड़ी क्षेत्रों के संगीत, तान, लय, वाद्य और नृत्य में असाधारण समानता दिखाई देती है। यहां तक कि मुद्राओं और नृत्य में शरीर के विभिन्न अंगों के इस्तेमाल में भी समानता नज़र आती है। यही साझी विरासत है।

हिमालय के उतार–चढ़ाव, चोटियां और घाटियां, लहराते नज़र आते शिखरों से मेल खाती नृत्य मुद्राएं इन क्षेत्रों की विशेषता हैं। फैलती बाहें, पैरों और घुटनों की लचक से लेकर कमर और गर्दन से जुड़ी मुद्राएं यही सब कुछ दर्शाती हैं। पूर्वी क्षेत्रों, विशेषकर असम और उसके आस–पास के नृत्यों की मुद्राओं की अपनी अलग विशेषता है। एक खास लय में चल रहे नृत्य में अचानक शारीरिक मुद्राओं का जल्दी–जल्दी

बदलना उस क्षेत्र की जलवायु, अचानक आने वाले तूफ़ानों और उससे जुड़े बिखराव का प्रतीक है। जंगलों की अनजान वादियों के रहस्य की झलक, नागालैण्ड के नगाओं के और मेघालय क्षेत्र के नृत्यों में देखने को मिलती है। यहां के नृत्य काफी सघन रूप से नृत्य शैली के एक–एक आयाम प्रस्तुत करते हैं। सौराष्ट्र के मछुआरों के नृत्यों की सारी मुद्राएं समुद्र की लहरों से प्रेरित होती हैं जबकि मैदानी क्षेत्रों के लोकनृत्य लय और रंगों से कुछ अलग अंदाज़ ही पेश करते हैं।

आखिर में एक बात ज़ोर देकर कहनी है : कला में हर दायरे को पार करने की क्षमता है। हमें अनावश्यक विवादों में उलझने की अपेक्षा समानताओं को महत्व देना चाहिये। हमें इन समानताओं के साथ–साथ उन पक्षों और कलाओं को भी सम्मान देना है जो हमारी परंपराओं से भिन्न हैं। विभिन्न कलाएं और उनसे जुड़ी विधाएं हमारी साझी विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। समाज को तोड़ने वाले तत्वों के विरुद्ध यह कलाएं एक सशक्त अस्त्र हैं जो सीमाओं के परे भी हमें जोड़ती हैं और पहले से मौजूद हमारे समाजी रिश्तों को मज़बूती प्रदान करती हैं और तनाव को दूर करती हैं। हमें इन कलाओं को महफूज़ ही नहीं रखना है बल्कि इनको और भी विकसित करना है। तभी हम साझी विरासत को आगे बढ़ा पायेंगे। देश के अंदर ही नहीं बल्कि सीमाओं के परे भी।

बस्तर के आदिवासियों की जीवन शैली

सुमन कुरेटी, शिवरानी गोस्वामी, सीता ठाकुर

आदिम जनजातियों के लिए विश्व में प्रसिद्ध बस्तर तीन ज़िलों का सम्भाग है। ये ज़िले हैं – उत्तर बस्तर (कांकेर) दक्षिण बस्तर (दंतेवाड़ा) तथा बस्तर (जगदलपुर) लगभग पांच हजार आबादी ग्रामों वाला यह दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र वनों तथा खनिजों से सम्पन्न है। उच्च समभूमि तथा सघन वनों के मध्य, नदी–नालों के संगीत के बीच, यहां के भोले–भाले आदिवासी लोग प्रकृति की गोद में रहते है। इनकी प्रमुख जातियां हैं, गोण्ड, मुरिया, माड़िया, दोरला, भतरा, परजा, हल्बा आदि। ये लोग जल–जंगल–ज़मीन को माता–पिता की तरह मानते हैं। जंगल से ये लोग तेंदू, महुवा, चिरोंजी, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, इमली, जामुन, लाख, धूप, भेलवा, बेल, नीम, टोरा, गोंद, साल–बीज आदि संग्रह कर उन्हें बेचकर अपना जीवन यापन करते हैं। खेती एक फसली होती है, जिसमें धान, कोदो, कुटकी, कोसरा, मूंग, बाजरा, ज्वार, अलसी, तिल, सरसों आदि प्रमुख हैं। कम मात्रा में गेहूं, चना, उड़द, अरहर, तिवरा, मूंगफली, गन्ना, सूरजमुखी आदि की भी फसल ली जाती है।

देवी, देव, तीज त्यौहार : चैतराई, आमाखानी, अकती, बीज खुटनी, हरियाली, इतवारी, नयाखाई आदि बस्तर के आदिवासियों के मुख्य त्यौहार हैं। आदिवासी समुदाय एकजुट होकर बूढ़ादेव, ठाकुर दाई, रानीमाता, शीतला, रावदेवता, भैंसासुर, मावली, अगारमोती, डोंगर, बगरूम आदि देवी देवताओं को पान फूल, नारियल, चावल, शराब, मुर्गा, बकरा, भेड़, गाय, भैंस, आदि देकर अपने–अपने गांव–परिवार की खुशहाली के लिए मन्नत मांगते है।

कुछ अनोखे रीति रिवाज़ : आज भी अधिकतर आदिवासी अपने खेतों के निकट ही घर बनाते हैं। यदि उस घर में किसी की मृत्यु हो जाय तो वहां से हटकर अलग मकान या झोपड़ी बनाने की प्रथा भी अधिकतर आदिवासियों में प्रचलित है। खाना पकाने हेतु मिट्टी के बर्तनों का ही अधिक प्रयोग करते हैं। लेकिन खाने के लिए दोना–पत्तल, अर्थात हर दिन एक नया बर्तन इस्तेमाल होता है। आदिवासी घरों में एक देव–कमरा होता है, जिसमें महिलाओं का प्रवेश वर्जित होता है। वहां मिट्टी तेल से रोशनी करना भी मना है। कन्या के प्रथम मासिक धर्म होने पर भाईबन्द उसका मुंह नहीं देखते। लड़की जंगल जाकर गड्ढा खोदकर पहली बार का फूल धरती माता को देती है। तीन दिनों के बाद लड़की को हल्दी–पानी से नहलाकर पीढ़े में बिठाकर हल्दी–चावल का टीका लगाते हैं तथा भेंट उपहार देते है।

विवाह प्रथायें : बस्तर में बहुधा ममेरे–फुफेरे लड़के लड़कियों में विवाह संबंध को प्राथमिकता दी जाती है। ऐसा न होने पर गांव के अंदर ही विवाह संबंध करना उचित माना जाता है। कई बार लड़का–लड़की एक–दूसरे को पसंद कर कहीं भाग जाते हैं जिन्हें परिवार वाले ढूंढकर लाते हैं, तब समाज में बैठका (मीटिंग) द्वारा फैसला कराया जाता है। यदि दोनों एक जाति समाज के हैं तो शादी हो जाती है, कुछ अर्थदण्ड अवश्य लगता है। अन्य समाज का मामला हो जाये तो उन लोगों को सामाजिक बहिष्कार भी झेलना पड़ जाता है किन्तु अंततः जुर्माना भरकर सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। शादी का अन्य प्रकार यह भी है कि लड़की अपने पसंद के लड़के के घर आकर रहने लगती है और अपने घर वापस नहीं जाती, अंततः लड़के के मां–बाप लड़की को पसंद कर ही लेते हैं और शादी हो जाती है। समाज के फैसले के मुताबिक खर्चा दिया जाता है।

घोटुल (कुमार गृह) : यह आदिवासी युवक युवतियों का शिक्षा केंद्र है, जिसकी सदस्यता मात्र कुवारों के लिए है। यहां ये सब एक साथ रहकर रीति–रिवाजों तथा गृहस्थी की बारीकियों की शिक्षा नाचते–गाते–खेलते प्राप्त कर लेते हैं। घोटुल में लड़कियों को मोटियारिन तथा लड़कों को चेलिक कहा जाता है। हर सदस्य का घर का नाम और घोटुल का नाम अलग–अलग होता है। घोटुल के नायक (मॉनीटर) को

शेष पृष्ठ 22 पर.....

भारत की लोकचित्र कलाएं

पवित्रा कपूर

लोकचित्रकलाएँ भारत की प्राचीनतम् और समृद्ध लोक कलाओं का एक अभिन्न अंग हैं। यह अन्य लोककलाओं की तरह हमें एक दूसरे से जोड़ती हैं। इनकी उत्पत्ति किसी शास्त्रीय कला की तरह मापदण्डों पर नहीं हुई है यह हमारे हृदय के भावों का दर्पण हैं। इन चित्रकलाओं को देखकर मन में जिज्ञासा भाव उत्पन्न होते हैं जिज्ञासा उसके सामाजिक संदर्भों को समझने की उसकी शैली और विविधता को जानने की, उसके रूप को सराहने की इत्यादि।

भारतीय लोक चित्र कलाओं में देवी देवता, ऋतुएं जनजीवन से जुड़े दृश्य, लोक गाथाओं की नायक और नायिकाएं, वन्य जनजीवन इत्यादि को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। इन कला रूपों में प्रयोग में आने वाली वस्तुएं स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रयोग की जाती है।

लोक चित्रकलाओं में महिलाओं की मुख्य भूमिका रही है। ये उत्तर प्रदेश की **कोहबर**, बिहार की **मधुबनी**, **चौक पुरना** और **रंगोली** जो अन्य नामों से भी जानी जाती है जैसे कि अल्पना, अलोपना, अइपन, भूमिशोभा, कोलम। इनमें से बहुत सी चित्रकलाएं दीवारों या ज़मीन पर मिट्टी का लेप कर उनमें रंग भरने से बनायी जाती हैं। यह कृतियां मन को मोह लेती हैं। महिलाओं के लिए यह उनके जीवन का अभिन्न अंग है। महिलाएं ही स्वस्थ साझी विरासत की वाहक हैं और शताब्दियों से अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह करती आयी हैं।

भारत में प्रचलित कुछ लोकचित्र कलाओं का विवरण इस प्रकार हैं :–

झोती : उड़ीसा के आदिवासियों और ग्रामीणों की लोककला है। इसमें ज़मीन और दीवार पर रेखाएं खींचकर सुरक्षा की कामना और बुराई को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

कलमकारी : आंध्रप्रदेश के श्रीकलाहास्ती ज़िला कलमकारी के लिए प्रसिद्ध है। कलम से की जाने वाली कारीगरी को कलमकारी कहते है। इस लोककला में बांस से बनी। नुकीली कलम और सब्जियों द्वारा तैयार किए गये रंगों का प्रयोग किया जाता है। रंगों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में किया जाता है। कलमकारी चित्र कहानी कहते हैं और इन को बनाने वाले कलाकारों में अधिकतर महिलाएं हैं।

तंजावौर और मैसूर चित्रकला : दक्षिण भारत में तंजावौर और मैसूर चित्रकला बहुत प्रचलित है। इस विधा में कृष्ण के बाल रूप और यशोदा की आकृतियों की प्रधानता है। इसमें अन्य हिंदू देवी–देवताओं को भी चित्रित किया जाता है। यह चित्रकारी मुख्यतया पूजाघर की दीवारों के लिए की जाती है। इन चित्रों को उभारा जाता है और इनमें चटक रंगों का प्रयोग होता है। रंगों के साथ सोने का पानी और नगों का प्रयोग इस चित्रकला को और भी सुंदर बना देता है। तंजावौर और मैसूर चित्रशैलियों के बनाने की प्रक्रिया में अनेक अंतर हैं। परंतु दोनों ही शैलियां मनमोहक हैं।

कुमाउँनी चित्र : उत्तरांचल की कुमाउँनी चित्रकला में जन्माष्टमी के समय कृष्ण लीलाओं का चित्रण किया जाता है। इस चित्रकला में पारम्परिक रंगों का प्रयोग कर कागज़ पर मनमोहक चित्रों की रचना की जाती है। इस प्रकार के चित्र अन्य त्योहारों और अवसरों के लिए भी बनाए जाते हैं।

पटना कलम : पटना कलम बिहार की एक और लोकप्रिय शैली है। 18 वीं, शताब्दी के आस–पास इस क्षेत्र में इसका प्रचलन बढ़ा। इसलिए इस शैली में मुगल और यूरोपीय शैली का मिश्रण देखने को मिलता है। इस शैली के चित्रकार मुगल कलाकरों के वंशज थे जो मुगल काल के पतन के बाद पटना के आसपास आकर बस गए। यह शैली अपने रंगों और हाथ से बने कागज़ के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है। यह चित्र अधिकतर बिहार के लोगों के जनजीवन को दर्शाते हैं।

पिछवाई चित्रकला : यह चित्र मंदिरों के गर्भगृह को सजाने के काम लाए जाते हैं। इन चित्रों का प्रयोग देवी–देवताओं कि प्रतिमाओं के पीछे लगाने के लिए होता है। इस चित्रकला का मुख्य केंद्र राजस्थान का नाथद्वारा मंदिर है। यह चित्र कपड़े पर पारंपरिक रंगों का प्रयोग कर बनाए जाते हैं। यह त्योहार के रंग, विषय और भाव की अभिव्यक्ति करते हैं।

फड़ चित्रकला : फड़ चित्रकला कपड़े पर होती है यह भी राजस्थान की लोकप्रिय लोकलाओं में से एक है। इस प्रकार के चित्र भीलवाड़ा क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं। यह चित्र ग्राम देवी, देवताओं, नायकों की कथाएँ दर्शाते हैं। इन चित्रों को लेकर लोक गायक गाँव–गाँव घूमते हैं और इन कथाओं का बखान करते हैं।

उश्ट कला : राजस्थान के बीकानेर में ऊँटों की खाल पर नक्काशी और चित्र बनाने की एक कला है। यह ईरान से मुगल काल में यहाँ आई और बीकानेर में प्रचलित हो गई जो अब भारतीय संस्कृति का हिस्सा हो गई है।

वर्ली चित्रकला : वर्ली चित्रकला महाराष्ट्र की लोकप्रिय चित्रकलाओं में से है। रेखाओं और त्रिकोणों का प्रयोग कर इस चित्रकला में जीवन चक्र को दिखाया गया है। इन चित्रों को बनाने के लिए सफेद रंग का प्रयोग होता है। यह रंग चावल के चूरे से बनाते हैं। इन चित्रों को आदिवासी अपने घर की बाहरी दीवारों पर चित्रित करते हैं।

तनखा चित्रकला : यह चित्रकला नेपाल और सिक्किम

के पहाड़ी क्षेत्रों में अधिक की जाती है। तनखा चित्रकला के चित्रकार अधिकतर बौद्धधर्म के अनुयायी होते हैं। यह चित्र बुद्ध के जीवन के विभिन्न पक्षों और जातक कथाओं के चित्रों के साथ, देवी, देवताओं, दैत्यों आदि की कथाएँ भी चित्रित करते हैं।

ऊपर लिखे सभी लोकचित्र कला परम्पराओं में क्षेत्रीय विविधता के बावजूद भी जनजीवन और देवी–देवताओं की जीवनी का चित्रण पाया जाता है और इस तरह ये साझी विरासत का जीवन्त प्रतीक हैं। हमें इन प्रतीकों को महफूज रखना है।

पृष्ठ 20 का शेष....

सिरदार या सिलेदार कहते हैं। घोटुल नहीं आने के लिए सदस्य को उतने दिनों की छुट्टी लेनी पड़ती है। बिना छुट्टी के नागा करने पर जुर्माना होता है, जिसे अपमानजनक माना जाता है। बीमारी आदि में न आना अपवाद स्वरूप होता है। घोटुल के सदस्यों की एकजुटता समाज में जन्म विवाह–मृत्यु के समय सामाजिक कार्यों में देखी जाती है। उनकी सेवा भावना सबका मन जीत लेती है। घोटुल में युवाओं की हर प्रकार से परीक्षा हो जाती है।

प्रसव संबंधी प्रथायें : आदिवासी महिलाएं मज़बूत शरीर वाली और अदम्य साहसी होती हैं। इनमें रिवाज है कि गर्भवती महिला को जचकी के लिए घर से बाहर झोपड़ी बनाकर डेरा दिया जाता है। वहां वह स्त्री गर्म पानी से स्नान करती है और प्रसव वेदना होने पर बिना किसी की सहायता से स्वयं की ताकत से ही बच्चे को जन्म देती है। पुरुष वर्ग चावल लेकर देव को पुकारते हैं। बच्चा पैदा होने के बाद आदिवासी महिला स्वयं नहा–धोकर कपड़े पहनकर आ जाती है। उसे आग के पास सुलाया जाता है। सास तथा जेठानी बच्चे के नाल फूल को दोना–पत्ता में रखकर आग के किनारे रख देती हैं, जो धीरे–धीरे जलकर समाप्त हो जाता है। प्रसूता महिला को हरिला (हिरवा) या अरहर का पानी पिलाते हैं। इसके बाद पन्द्रह दिनों तक हांडी छुपाने का नैग–दस्तूर किया जाता है जिसमें गायतीन (आदिवासी पुजारिन) आती है नहला–धुलाकर तेल लगाकर कलश जलाकर मां बच्चा को चावल का टीका लगाकर आशीर्वाद की रस्म अदायगी की जाती है। घर के लोग शराब निकालते हैं। महुवा की सुरा से देव का तर्पण कर सभी लोग भोजन तथा गाना बजाना करते हैं।

मृत्यु संस्कार : आदिवासी समुदाय में किसी की मृत्यु हो जाने पर ढोल नगाड़े को एक विशेष लय में बजाकर संदेश भेजा जाता है, जिसे सुन–समझ कर आस–पास के लोग मृतक के घर की ओर शीघ्र पहुंच जाते हैं शव को जलाने तथा जमीन में दफनाने, ये दोनों ही प्रकार की प्रथायें प्रचलित हैं। यदि किसी बुजुर्ग की मृत्यु होती है तो उसे शादी समझते हैं तथा उसी प्रकार गाजे–बाजे के साथ गीत गाते हुए शमशान ले जाते हैं। मठ में मुर्गा, शराब, नाच रंग, हास्य व्यंग सब कुछ वैवाहिक आनन्दोत्सव की तरह होता है। 5 या 6 दिनों बाद विशेष क्रिया कर्म होता है जिसे बड़े काम कहा जाता है। मृतक के लिए भोजन, शराब, कांदा, चावल, फल, बर्तन, कपड़ा आदि रखते हैं। इस अवसर पर पेड़ लगाने की भी प्रथा है, जैसे आम, तुलसी, सल्फी आदि। तालाब में कलश रखकर तेल हल्दी चढ़ाते हैं। परिवार के सब लोग पानी में मृतक की आत्मा तलाश करते हैं। मृतक का जिस पर ज्यादा प्रेम रहता है। उसे ही तालाब का कोई जीव जैसे मछली, मेंढक मिलता है। इसी जीव को डूमादेव कहते हैं। अब डूमादेवा की शादी का मण्डप बनाकर मृतक की जीवन शैली पर गीत गाते हैं। शराब पीकर झूमते, नाचते हैं।

अन्य विशिष्ट प्रथायें : आदिवासी समुदाय में भांजे का विशेष महत्व होता है। इसके पीछे पथ–प्रदर्शन की भावना रहती है। भांजे को दान दिया जाता है। बेटियां पूरे परिवार से नाच–गाकर, नाटक कर दान लेती हैं। खाने का सामान, लाई, चना, गुड़ आदि मेहमानों को बांटा जाता है। बाद में गायता (पुजारी) द्वारा पूरे घर में कसा–पानी का छिड़काव किया जाता है, कि कहीं घर तथा देवता अशुद्ध न हो गये हों।

आदिवासी समुदाय के लोग अपने कबीले में स्कूल शिक्षा को बहुत कम महत्व देते हैं। उनमें यह कहावत कही जाती है कि 'कम पढ़े तो गांव से जाए और ज्यादा पढ़े तो देश से जाए' अर्थात थोड़ा सा पढ़ेगा तो किसी नौकरी में गांव से बाहर जाएगा और ज्यादा पढ़ेगा तो राज्य से बाहर जाएगा। फिर वह हमारे सुख–दुःख का साथी नहीं होगा और मृत्यु कहीं बाहर हो गयी तो माटी नहीं मिलने के कारण माटी चोर हो जाएगा, मां–बाप के कर्ज़ को नहीं उतार पाएगा। इसी कारण से समाज के बुजुर्ग लोग स्कूली शिक्षा को महत्व नहीं देते। पारम्परिक काम–धन्धों में ही बच्चों को लगा देते हैं। आदिवासियों के जीवन में पैसा तो कम होता है किंतु उनके अनुभवों का खज़ाना अपार होता है कृषि कार्य और पशु पालन में तो वे निपुण होते हैं, हस्त कला, मूर्तिकला आदि में भी अत्यंत सुंदर कला के नमूने पेश करते हैं।

परिवर्तन, बरदेभाटा, कांकेर, छत्तीसगढ़

कस्तूरी कुण्डल बसे

छाती में जलती हुई आग की परछाई नहीं होती...

अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम (31.08.1919 – 31.10.2005) का भारतीय साहित्य में उदय एक तरह से नई औरत का उदय है जो अपनी अभिव्यक्ति में स्पष्टतावादी और निडर है। वह कई मायनों में परंपरा विरोधी थीं। उनकी आत्मकथा **'रसीदी टिकट'** और **'कागज़ ते कनवास'** इसका प्रमाण हैं। उनकी कविता की पंक्तियां हैं : **एक दर्द सी/जो सिगरेट दि तरह/मैं चुप चाप पीत्ता है/सिरफ कुछ नज्मा हन/जो सिगरेट दे नालों/मैं राख वांगां छडियां।**

उनका जन्म गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में एक सिख परिवार में हुआ था। 1947 में उनका परिवार भारत आ गया। 1960 में उन्होंने अपने पति से तलाक ले लिया और अपने से छोटी उम्र के चित्रकार इमरोज के साथ बिना वैवाहिक बंधन के रहने लगीं। यह साथ मृत्युपर्यंत रहा।

उन्होंने पंजाबी साहित्य को ज़्यादा बड़ा फलक दिया। विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखे उनके प्रसिद्ध उपन्यास **पिंजर** पर चंद्र प्रकाश द्विवेदी ने पिछले दिनों ही एक यादगार फिल्म बनाई थी। इसके अलावा उनके दो और उपन्यासों **धरती सागर और सीपीयां** तथा **उन्हां दि कहानी** पर क्रमशः **'कादंबरी'** और **'डाकू'** फिल्में बनाई गई थीं।

उनका रचना–संसार विपुल है। साहित्य अकादेमी पुरस्कार (कविता संग्रह **'सुनहरे'** के लिए 1955 में) से सम्मानित होनेवाली वह पहली महिला लेखिका थीं। उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ और पद्मविभूषण से भी सम्मानित किया गया था। उनको श्रद्धांजलि स्वरूप प्रस्तुत है उनकी आत्मकथा **'रसीदी टिकट'** से कुछ अंश :

क्या यह कयामत का दिन है ?

जिन्दगी के कई वे पल, जो वक्त की कोख से जन्मे, और वक्त की कब्र में गिर गये, आज मेरे सामने खड़े हैं...

ये सब कब्रें कैसे खुल गयीं ? और ये सब पल जीते–जागते कब्रों में से कैसे निकल आये ?

यह ज़रूर कयामत का दिन है...

यह 1918 की कब्र में से निकला हुआ एक पल है – मेरे अस्तित्व से भी एक बरस पहले का। आज पहली बार देख रही हूँ, पहले सिर्फ सुना था।

मेरे माँ–बाप दोनों पंचखंड भसोड़ के स्कूल में पढ़ाते थे। वहाँ के मुखिया बाबू तेजसिंह की बेटियाँ उनके विद्यार्थियों में थीं। उन बच्चियों को एक दिन न जाने क्या सूझी, दोनों ने मिलकर गुरुद्वारे में कीर्तन किया, प्रार्थना की, और प्रार्थना के अन्त में कह दिया, 'दो जहानों के मालिक! हमारे मास्टरजी के घर एक बच्ची बख्श दो।'

भरी सभा में पिताजी ने प्रार्थना के ये शब्द सुने, तो उन्हें मेरी होने वाली माँ पर गुस्सा आ गया। उन्होंने समझा कि उन बच्चियों ने उसकी रज़ामन्दी से यह प्रार्थना की है, पर माँ को कुछ मालूम नहीं था। उन्हीं बच्चियों ने उनकी रज़ामन्दी से यह प्रार्थना की है, पर माँ को कुछ मालूम नहीं था। उन्हीं बच्चियों ने ही बाद में बताया कि हम राज बीबी से पूछतीं, तो वह शायद पुत्र की कामना करतीं, पर वे अपने मास्टरजी के घर लड़की चाहती हैं, अपनी ही तरह एक लड़की।

यह पल अभी तक उसी तरह चुप है – कुदरत के भेद को होंठों में बन्द करके हौले से मुस्कुराता, पर कहता कुछ नहीं। उन बच्चियों ने यह प्रार्थना क्यों की ? उनके किस विश्वास ने सुन ली ? मुझे कुछ नहीं मालूम, पर यह सच है कि साल के अन्दर राज बीबी 'राज माँ' बन गयीं।

सोलहवाँ साल

सोलहवाँ साल आया – एक अजनबी की तरह। पास आकर भी एक दूरी पर खड़ा रहा। मैं चुपचाप उसकी ओर देख लेती, वह कभी मुस्कुराकर मेरी ओर देख लेता।

घर में पिताजी के सिवाय कोई नहीं था – वह भी लेखक जो सारी रात जागते थे, लिखते थे, और सारे दिन सोते थे। माँ जीवित होतीं, तो शायद सोलहवाँ साल और तरह से आता – परिचितों की तरह, सहेलियों–दोस्तों की तरह, सगे–सम्बन्धियों की तरह, पर माँ की गैरहाज़िरी के कारण ज़िन्दगी में से बहुत कुछ गैरहाज़िर हो गया था। आसपास के अच्छे–बुरे प्रभावों से बचाने के लिए पिताजी को इसमें ही सुरक्षा समझ में आयी थी कि मेरा कोई परिचित न हो, न स्कूल की कोई लड़की, न पड़ोस का कोई लड़का। सोलहवाँ बरस भी इसी गिनती में शामिल था, और मेरा खयाल है, इसीलिए वह सीधी तरह घर का दरवाज़ा खटखटाकर नहीं आया था, चोरों की तरह आया था।

वह कभी किसी रात मेरे सिरहाने की खुली खिड़की में से होकर चुपचाप मेरे सपनों में आ जाता, या कभी दिन के समय, जब मेरे पिता को सोये हुए देखता, तो वह घर की दीवार फाँदकर आ जाता, और मेरे कमरे के कोने में लगे हुए छोटे–से शीशे में आकर बैठ जाता।

घर किताबों से भरा हुआ था। बहुत–सी किताबों का वातावरण धार्मिक था, समाधि में लीन ऋषियों की भाँति। पर कई ऐतिहासिक पुस्तकों का वातावरण ऐसा भी था, जिनमें

किसी मेनका या उर्वशी के आगमन से ऋषियों की समाधि भंग हो जाती थी। यह दूसरे प्रकार की पुस्तकें ऐसी थीं, जिन्हें पढ़ते समय उनकी किसी पंक्ति में से निकलकर अचानक मेरा सोलहवाँ बरस मेरे सामने आ खड़ा होता था। लगता था वह सोलहवाँ बरस भी जैसे किसी अप्सरा का रूप था, जो मेरे सीधे–सादे बचपन की समाधि भंग करने के लिए कभी अचानक मेरे सामने आ खड़ा होता था...

कहते हैं ऋषियों की समाधि भंग करने के लिए जो अप्सराएँ आती थीं, उसमें राजा इन्द्र की साजिश होती थी। मेरा सोलहवाँ बरस भी अवश्य ही ईश्वर की साजिश रहा होगा, क्योंकि इसने मेरे बचपन की समाधि तोड़ दी थी। मैं कविताएँ लिखने लगी थी और हर कविता मुझे वर्जित इच्छा की तरह लगती थी। किसी ऋषि की समाधि टूट जाये, तो भटकने का शाप उसके पीछे पड़ जाता है – 'सोचों' का शाप पीछे पड़ गया...

पर सोलहवें वर्ष से मेरा स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं था – चोरी का रिश्ता था। इसलिए वह भी मेरी तरह मेरे पिता के आगे सहम जाता था, और मेरे पास से परे हटकर किसी दरवाज़े के पीछे जाकर खड़ा हो जाता था, और उसे छिपाये रखने के लिए मैं एक क्षण जो मनमर्जी की कविता लिखती थी, दूसरे क्षण फाड़ देती थी और पिता के सामने फिर सीधी–सादी और आज्ञाकारी बच्ची बन जाती थी।

मेरे पिता को मेरे कविता लिखने पर आपत्ति नहीं थी, बल्कि काफिये–रदीफ की बात मुझे मेरे पिता ने सिखायी थी, केवल उनका आग्रह था कि मैं धार्मिक कविताएँ लिखूँ, और मैं आज्ञाकारी बच्ची की तरह वही दकियानूसी कविताएँ लिख देती थी (उम्र के सोलहवें साल में हर विश्वास पारम्परिक होता है, और इसीलिए दकियानूसी भी)।

इस तरह सोलहवाँ वर्ष आया और चला गया। प्रत्यक्ष रूप में कोई घटना नहीं घटी। वास्तव में वह वर्ष आयु की सड़क पर लगा हुआ खतरे का चिन्ह होता है (कि बीते वर्षों की सपाट सड़क खत्म हो गयी है, आगे ऊँची–नीचे और भयानक मोड़ों वाली सड़क शुरू होनी है, और अब माता–पिता के कहने से लेकर स्कूल की पुस्तकें कंठस्थ करने, उपदेश को सुनने–मानने और सामाजिक व्यवस्था को आदर–सहित स्वीकार करने के भोले–भाले विश्वास के सामने हर समय एक प्रश्न–वाक्य आ खड़ा होगा...)। इस वर्ष जाना–पहचाना सब कुछ शरीर के वस्त्रों की तरह तंग हो जाता है, होंठ ज़िन्दगी की प्यास से खुश्क हो जाते हैं, आकाश के तारे, जिन्हें सप्तर्षियों के आकार में देखकर दूर से प्रणाम करना होता था, पास जाकर छू लेने को जी करता है... इर्द–गिर्द और दूर–पास की हवा में इतनी मनाहियाँ और इतने इनकार होते हैं और इतना विरोध कि साँसों में आग सुलग उठती है...

जिस हद तक यह सब औरों के साथ होता है, मेरे साथ उससे तिगुना हुआ। (एक, आसपास की मध्य श्रेणी का फीका और रस्मी रहन–सहन; दूसरे, माँ के न होने के कारण हर समय मनाहियों का सिलसिला, और तीसरे, पिता के धार्मिक अगुआ होने की हैसियत में मुझ पर भी अत्यन्त संयमी होकर रहने की पाबन्दी) इसलिए सोलहवें वर्ष से मेरा परिचय उस असफल प्रेम की तरह था, जिसकी कसक सदा के लिए कहीं पड़ी रह जाती है और शायद इसीलिए वह सोलहवाँ वर्ष भी अब मेरी जिन्दगी के हर वर्ष में कहीं–न–कहीं शामिल है...

इसके रोष का पूरा रूप मैंने उसके बाद कई बार देखा। 1947 में देश के विभाजन के समय भी देखा। सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मूल्य काँच के बरतनों की भाँति टूट गये थे और उनकी किरचें लोगों के पैरों में बिछी हुई थीं। ये किरचें मेरे पैरों में भी चुभी थीं और मेरे माथे में भी। ज़िन्दगी का मुँह देखने की भटकन में मैंने उसी तपिश के साथ कविताएँ लिखीं, जिस तपिश के साथ कोई सोलहवें वर्ष में अपने प्रिय का मुख देखने के लिए लिखता है।

सिर्फ औरत

मैं औरत थी, चाहे बच्ची–सी, और यह खौफ–सा विरासत में पाया था कि दुनिया के भयानक जंगल में से मैं अकेली नहीं गुजर सकती, और शायद इसी भय में से अपने साथ के लिए मर्द के मुँह की कल्पना करना – मेरी कल्पना का अन्तिम साधन था...

पर इस मर्द शब्द के मेरे अर्थ कहीं भी पढ़े, सुने या पहचाने हुए अर्थ नहीं थे। अन्तर में कहीं जानती अवश्य थी, पर अपने आपको भी बता सकने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी। केवल एक विश्वास–सा था – कि देखूँगी तो पहचान लूँगी।

पर दूर मीलों तक कहीं भी कुछ दिखाई नहीं देता था। और इस प्रकार वर्षों के कोई अड़तालीस मील गुज़र गये।

मैंने जब उसे पहली बार देखा... तो मुझसे भी पहले मेरे मन ने उसे पहचान लिया। उस समय मेरी आयु कोई अड़तालीस वर्ष थी...

यह कल्पना इतने वर्ष जीवित रही, और इसके अर्थ में जीवित रहे–इस पर चकित हो सकती हूँ, पर हूँ नहीं, क्योंकि जान लिया है कि मेरे 'मैं' की परिभाषा थी–थी भी, और है भी।

मैं उन वर्षों में नहीं मिटी, इसलिए वह भी नहीं मिटी...

यह नहीं कि कल्पना से शिकवा नहीं किया, उस आयु की कई कविताएँ निरी शिकवा ही हैं, जैसे –

'लक्ख तेरे अम्बाराँ बिच्चों, दस्स की लभ्भा सान्नू
इक्को तंद प्यार दी लभ्भी, ओह वी तंद इकहरी'...

(तेरे लाखों अम्बारों में से बताओ हमें क्या मिला प्यार का एक ही तार मिला, वह भी इकहरा...)

पर यह इकहरा तार वर्षों के बीतने पर भी क्षीण नहीं हुआ। उसी तरह मुझे अपने में लपेटे हुए मेरी उम्र के साथ चलता रहा...

कई हादसे हुए पर कल्पना, जो मेरे अंगों की तरह मेरे बदन का हिस्सा थी, वह मेरे बदन में निर्लेप होकर बैठी रही।

उसे कई वर्ष समाज ने भी समझाया, और कई वर्ष मैंने स्वयं भी, पर उसने पलकें नहीं झपकायीं। वह कई वर्षों के पार

– उस वीरानगी की ओर देखती रही, जहाँ कुछ भी नज़र नहीं आता था...

और जब उसने पलकें झपकायीं, तब मेरी उम्र को अड़तालीसवाँ वर्ष लगा हुआ था...

और तब... मैंने जाना... कि क्यों उसे, उससे कुछ अलग, या आधा, या लगभग–सा कुछ भी नहीं चाहिए था।

यूँ तो–मेरे भीतर की औरत सदा मेरे भीतर के लेखक से दूसरे स्थान पर रही है... कई बार यहाँ तक कि मैं अपने भीतर की औरत का अपने आपको ध्यान दिलाती रही हूँ। 'सिर्फ लेखक' का रूप सदा इतना उजागर होता है कि मेरी अपनी आँखों को भी अपनी पहचान उसी में मिलती है।

पर जिन्दगी में तीन वक्त ऐसे आये हैं, मैंने अपने अन्दर की 'सिर्फ औरत' को जी–भरकर देखा है। उसका रूप इतना भरा–पूरा था कि मेरे अन्दर के लेखक का अस्तित्व मेरे ध्यान से विस्मृत हो गया। वहाँ, उस समय, कोई थोड़ी–सी भी खाली जगह नहीं थी, जो उसकी याद दिलाती। यह याद केवल अब कर सकती हूँ – वर्षों की दूरी पर खड़े होकर।

पहला वक्त तब देखा था जब मेरी उम्र पचीस वर्ष की थी। मेरे कोई बच्चा नहीं था और मुझे प्रायः रात को एक बच्चे का स्वप्न आया करता था। एक छोटा–सा चेहरा, बड़े तराशे हुए नक्श, सीधा टुकुर–टुकुर मेरी ओर देखता हुआ, और कई बार यही स्वप्न देखने के कारण मुझे उस बच्चे के चेहरे की पक्की पहचान हो गयी थी। स्वप्न में वह मुझसे बात भी करता था, रोज़ एक ही बात, और मुझे उसकी आवाज़ की पूरी पहचान हो गयी थी। स्वप्न में मैं पौधों में पानी दे रही होती थी, और अचानक एक गमले में फूल खिलने की जगह एक बच्चे का चेहरा खिल उठता था...

मैं चौंककर पूछती थी – 'तू कहाँ था ? मैं तुझे ढूँढ़ती रही'

और वह चेहरा हँस पड़ता था – 'मैं यहीं था, छिपा हुआ था।'

और मैं जल्दी से गमले में से बच्चे को उठा लेती थी।

जब मैं जाग जाती थी, मैं वैसी की वैसी ही होती थी, सूनी, वीरान और अकेली। एक 'सिर्फ औरत', जो अगर माँ नहीं बन सकती थी, तो जीना नहीं चाहती थी।

और जब मैने अपनी कोख से आये बच्चे को देख लिया, तो मेरे भीतर की निरोल औरत उसे देखती रह गयी।

दूसरी बार ऐसा ही समय मैंने तब देखा था, जब एक दिन साहिर आया था, तो उसे हल्का–सा बुखार चढ़ा हुआ था। उसके गले में दर्द था, साँस खिंचा–खिंचा था। उस दिन उसके गले और छाती पर मैंने 'विक्स' मली थी। कितनी ही देर मलती रही थी, और तब लगा था, इसी तरह पैरों पर खड़े–खड़े मैं पोरों से, उँगलियों से और हथेली से उसकी छाती को हौले–हौले मलते हुए सारी उम्र गुज़ार सकती हूँ। मेरे अन्दर की 'सिर्फ औरत' को उस समय दुनिया के किसी कागज़–कलम की आवश्यकता नहीं थी।

और तीसरी बार यह 'सिर्फ औरत' मैंने तब देखी थी, जब अपने स्टूडियो में बैठे हुए इमरोज ने अपना पतला–सा ब्रश अपने कागज के ऊपर से उठाकर उसे एक बार लाल रंग में डुबोया था, और फिर उठकर उस ब्रश से मेरे माथे पर बिन्दी लगा दी थी...

मेरे भीतर की इस 'सिर्फ औरत' की 'सिर्फ लेखक' से कोई अदावत नहीं। उसने आप ही उसके पीछे, उसकी ओट में खड़े होना स्वीकार कर लिया है – अपने बदन को उसकी आँखों से चुराते हुए, और शायद अपनी आँखों से भी, और जब तक तीन बार उसने अपनी जगह पर आना चाहा था, मेरे भीतर के 'सिर्फ लेखक' ने पीछे हटकर उसके लिए जगह खाली कर दी थी।

सज्जाद हैदर

मेरे अकेलेपन का शाम इमरोज ने तोड़ा है, पर उससे मिलने से पहले एक और प्यारी घटना मेरे साथ घटी थी, एक बहुत ही पाक–दिल इनसान की दोस्ती मुझे मिली थी।

सज्जाद हैदर से परिचय तब हुआ था, जब अभी देश का विभाजन नहीं हुआ था। अपने समकालीनों में से किसी एक से भी ऐसी मुलाकात नहीं हुई, जो उलझनों और गलतफहमियों से रहित होकर हुई हो। दोनों हाथों से तल्खियाँ बाँटने वाली सब मुलाकातों में केवल सज्जाद की ऐसी मुलाकात थी, जो पहली थी, और जिसके साथ दोस्ती लफ्ज़ आँखों के आगे झिलमिला जाता था...

लाहौर में थी, तो अकसर मुलाकात होती थी। किसी मुलाकात के होंठों पर कोई शोख हर्फ कभी नहीं आया। वह मिलने आता था, तो एक अदब उसके साथ ही सीढ़ियों पर चढ़ता था। फिर बहुत जल्दी फसाद शुरू हो गये। सारा–सारा दिन कर्फ्यू खुलता, तो वह घड़ी–पल के लिए ज़रूर आता। उन्हीं दिनों 23 अप्रैल आयी। यह मेरी बच्ची का जन्मदिन था। शहर के अग्नि और हत्याकांडों के वातावरण में जन्मदिन पर खटका हुआ, सज्जाद मेरी बच्ची के पहले जन्मदिन केक बनवाकर लाया था।

देश का विभाजन हो गया। मैं देहरादून में थी। सज्जाद के खत बराबर आते थे। उन्हीं दिनों मेरे लड़का हुआ था और लाहौर में सज्जाद के घर भी बेटा। मैंने अपने लड़के का नाम नवराज चुना, और सज्जाद ने मेरे बच्चे के नाम पर अपने बच्चे का नाम नवी रखा। हमने तसवीरों के ज़रिये बच्चों को देखा।

फिर मेरे बेटे को बुखार आने लगा। कई दिन हो गये, तो मैं घबरा गयी। सज्जाद के खत का जवाब दिया, तो बुखार के बारे में लिख गयी। वापसी डाक से जो खत आया, वह मेरे ज़ेहन में अब तक उतरा हुआ है। लिखा था–'मैं सारी रात खुदा के आगे दुआ करता रहा कि तुम्हारा बच्चा राज़ी हो जाये। अरबी कहावत है कि जब दुश्मन दुआ करता है, तो वह ज़रूर कबूल होती है। इस वक्त मैं दुनिया की नज़र में तुम्हारा दुश्मन हूँ। वैसे खुदा न करे मैं कभी भी तुम्हारा या तुम्हारे बच्चे का दुश्मन बनूँ।

'वारिस शाह से' कविता से पहले देश के बँटवारे के बारे में एक और कविता लिखी थी **'पड़ोसी सौन्दर्य'** और लिखते ही सज्जाद को भेज दी थी। वह कविता पंजाबी में मेरे पास से खो गयी, इसलिए कभी मेरी भाषा में नहीं छपी, पर सज्जाद ने खत में लिखी हुई कविता का अंग्रेजी अनुवाद किया और वह 'पाकिस्तान टाइम्स' में छपी थी।

फिर कुछ बरस बाद साहिर की मुलाकात पर मैंने एक नज्म लिखी–**'सात बरस'**, वह चाहे देश के विभाजन के समय पाकिस्तान नहीं गया था (गया था, वह वहाँ रहा नहीं) वह हिन्दुस्तान में था, पर सात बरस उससे मुलाकात नहीं हो सकी थी। सात बरस के बाद मिला, तो एक कविता लिखी, वह छपी, तो किसी तरह पाकिस्तान भी पहुँच गयी। सज्जाद ने पढ़ी और मुझे खत लिखा–'मैं तुमसे मिलने के लिए हिन्दुस्तान आना चाहता हूँ, पन्द्रह–बीस दिन की छुट्टी लेकर, तुम बड़ी उदास लगती हो। मैं तुमसे 'उसकी बातें करूँगा, जिसके लिए तुमने **'सात बरस'** कविता लिखी है।

वह आकर अठारह दिन दिल्ली में रहा, रात को मरीना होटल में, और सारा दिन मेरे पास। यह मेरी ज़िन्दगी में पहला समय था, जब मैंने जाना कि दुनिया में मेरा भी कोई दोस्त, है, हर हाल में दोस्त, और पहली बार जाना कि कविता केवल इश्क के तूफान में से ही नहीं निकलती, वह दोस्ती के शान्त पानियों में से भी तैरती हुई आ सकती है। सज्जाद के जाने के समय मैंने कविता लिखी–'कहीं पंख बिकते हों, तो हमें दो, परदेसी! या हमारे पास रह जाओ...

एक बार लाहौर में किसी दावत में सज्जाद के एक दोस्त की बीवी ने मिठाइयाँ देते हुए सज्जाद को बार–बार इमरती पेश की। सज्जाद ने एक–दो बार तो हँसकर टाल दिया, पर फिर संजीदा होकर बोला, 'भाभी, तुमने उसके नाम को लेकर आज मुझसे मज़ाक किया है, फिर कभी न करना। तुम्हें नहीं मालूम कि मेरी मुहब्बत में उसके लिए परस्तिश भी शामिल है।

उसकी हसीन रूह की एक और घटना याद आ रही है। हम कनॉट प्लेस से घर आये थे, स्कूटर में। स्कूटर वाले ने कुछ ज्यादा ही पैसे माँगे, मैं उससे पैसों के बारे में कुछ कह रही थी कि सज्जाद ने जल्दी से जितने पैसे उसने माँगे थे, उतने उसे थमा दिये और उसके जाने के बाद मुझसे कहने लगा, 'ये जितने भी लोग पाकिस्तान से उजड़कर आये हैं, मुझे लगता है, मैं सबका कुछ–न–कुछ देनदार हूँ...

काश, इस मनुष्य की रूह से सारी दुनिया की राजनीति, अगर बहुत नहीं तो थोड़ा–सा ही सौन्दर्य माँग लेती...!

फिर राजनीतियों के कर्म के दोनों देशों में चिट्ठी–पत्री बन्द हो गयी। जिन वर्षों में मैं बड़ी मुश्किल हालत से गुज़र रही थी, बड़ी अकेली थी, सज्जाद का खत भी मेरे साथ नहीं था (उन दिनों कई महीने तक एक साइकेट्रिक्ट के इलाज में रही थी, उसके कहने पर उसके लिए जो अपनी परेशानियाँ और सपने लिखे थे, वही फिर **'काला गुलाब'** किताब में छपे थे)।

फिर इमरोज मेरी ज़िन्दगी में आया। दोनों देशों में कुछ समय के लिए चिट्ठी–पत्री भी खुली। फिर मैंने और इमरोज ने सज्जाद को खत लिखा। जवाब में उसका जो खत इमरोज के नाम आया, दुनिया के सब इतिहास उसे सलाम कर सकते हैं। लिखा था–'मेरे दोस्त, मैंने तुम्हें देखा नहीं है, पर 'ऐमी की आँखों से देख लिया है, और आज दुनिया के इतिहास में जो नहीं हुआ, वह हुआ है, मैं तुम्हारा रकीब तुम्हें सलाम भेजता हूँ।'

साहिर से भी मेरी और इमरोज की मुलाकात हुई थी। पहली मुलाकात में वह उदास था। हम तीनों ने एक ही मेज़ पर जो कुछ पिया उसके खाली गिलास हमारे आने के बाद भी कुछ देर तक उसकी मेज पर पड़े रहे। उस रात को उसने नज़्म लिखी थी–'मेरे साथी खाली जाम, तुम आबाद घरों के वासी, हम हैं आवारा बदनाम'... और यह नज़्म उसने मुझे रात के कोई ग्यारह बजे फोन पर सुनायी, और बताया कि वह बारी–बारी से तीनों गिलासों में विहस्की डालकर पी रहा है, पर बम्बई में दूसरी मुलाकात के समय इमरोज को बुखार चढ़ा हुआ था, उसने उसी वक्त अपना डॉक्टर भेज दिया था, उसके इलाज के लिए।

सज्जाद के बारे में जो मन में था, निस्संकोच कलम की नोक पर आ गया है–अपने पाक रूप में, पर राजनीतिक हालात का तकाज़ा है कि उसका ज़िक्र भी मेरी जबान पर नहीं आना चाहिए। पिछले दिनों जब रेडियो और टेलीविजन के लिए कुछ संस्मरण प्रस्तुत करते हुए मैंने फैज़, नदीम और सज्जाद का कुछ बार नाम लिया, तो पाकिस्तान के कुछ अखबारों ने उसके अर्थ तोड़–मरोड़कर मेरे साथ अपने लोगों को भी बुरा–भला कहा!

पृष्ठ 28 का शेष.....
आकंठ डूबी हुई है तो इसका सीधा–सपाट कारण है कि हमारे नीति–नियंताओं ने कभी साधनों, संसाधनों का समुचित प्रयोग नहीं किया और विकास की जनाभिमुख योजनाएं महज कागजी रहीं। हम अपनी आर्थिक उन्नति के गीत गाते रहें लेकिन सच यही है कि यह विकास न तो सर्वांगीण हैं न पुख्ता। सर्वेक्षण के आंकड़े कहते हैं कि मात्र दो प्रतिशत अमीर जनता ही शहरों और गांवों में रह रही है। कर्ज बांटने वालों का एक बड़ा और प्रतिस्पर्धी बाजार तैयार हो चुका है और वे अनुत्पादक कार्यों के लिए मुक्त हस्त कर्ज दे रहे हैं, बाजार के लोकलुभावने विस्तार के साथ यह एक घातक परिघटना है। गरीबी, बेरोजगारी और असुरक्षा से जूझ रहे देश के नीति–नियामकों को देश और देशवासियों को ऋणग्रस्तता के अजगरी चंगुल से राहत दिलाने का कारगर उपाय ढूंढ़ना होगा अन्यथा भविष्य में विकास और आर्थिक उन्नयन के आंकड़ों का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

मां एक, पर बाप अलग–अलग

–शरण कुमार लिंबाले

मराठी के प्रख्यात दलित लेखक। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उनकी आत्मकथा 'अक्करमासी' से एक अंश :

विट्ठल कांबले किसी हणमंता लिंबाले नामक पटेल के खेत में मज़दूर था। बुरे समय में पटेल सहायता भी करता। इस सहायता से एक पूरा परिवार असहाय होता जा रहा था। पटेल के हाथ किसी भरे–पूरे संसार को ध्वस्त कर रहे थे।

गांव पंचायत ने मसाई के दूध–पीते बच्चे को छीन लिया। दो–चार बरस की चंद्रकांता को भी उससे छीन लिया गया। विट्ठल कांबले ने मसा मां से तलाक ले लिया। दो छोटे बच्चों को छोड़कर मसा मां रोती हुई निकलीं। छोटा लछमन मां की ओर हाथ करके रो रहा था। चंद्रकांता मां के साथ जाने की ज़िद कर रही थी। पति–पत्नी के संबंध टूट सकते हैं, पर मां–बच्चों के संबंध कैसे टुटेंगे ?

मसा मां अब खुली थी। रोज़ उसी रास्ते से लकड़ियों की गठरी लेकर निकलती। कस्बे की ओर जाती। पर उसकी आत्मा अपने पति में, बच्चों में रमी रहती। उसे ज़िंदगी से उठाया गया था। दंडकारण्य में सहारा ढूंढ़नेवाली सीता की तरह उसकी अवस्था हो चुकी थी। वह दिशाहीन हो गई थी।

विट्ठल कांबले ने दूसरा विवाह किया। पुरुषों को क्या, कितनी भी बार पान खाकर वह थूक सकता है। पर औरत जात ? एक बार तबाह हुई कि हो गया। मसा मां की शादी कैसे होगी ? घर में खाने के लिए दाना नहीं। परित्यक्ता खुली औरत। सिर पर स्थित आंचल कंधे से खिसक गया था।

दादुन्या हमारे गांव का गोंधली। कलगी–तुरे के गीत गाता था। नाटक भी करवाता था। बचे–खुचे समय में अड़ोस–पड़ोस के गांवों में बरतन भी बेचा करता था। मसा मां के सन्मुख उसने प्रस्ताव रखा। कलगी–तुरे में गाने के लिए औरत की ज़रूरत होती है। उस औरत को डफ पर गीत गाना पड़ता है। पुरुष की आवाज़ में आवाज़ मिलाकर गाना पड़ता है। चार–पांच लोगों की यह भजनी मंडली होती है। मां ने नकार दिया। अकेली ही जीने का उसने निर्णय लिया हणमंता लिंबाले इसी टोह में था। उसने मसाई से संपर्क किया और उसे अक्कलकोट में किराए के एक कमरे में रख दिया। मां ने भी मजबूरन हणमंता का हाथ पकड़ लिया। जिस व्यक्ति को लेकर उसे बदनाम किया गया था, ज़िंदगी से उठा दिया गया था, उसी के साथ रहना उसने तय किया। हणमंता ने मसाई के दांपत्य जीवन को तोड़ दिया और उसे अपने नियंत्रण में रख लिया। जैसे कोई शौक से कबूतर पालता हो। दोनों मज़े में रहने लगे। मसाई गर्भवती हुई। लड़का हुआ। लड़के का बाप कौन ? हणमंता को मसाई चाहिये थी। उसका शरीर चाहिए था। पर संतति ? मसाई के उस लड़के के नाम के साथ अगर हणमंता का नाम लग जाता तो उसकी बदनामी होती। लड़का बड़ा होकर खेती में हिस्सा मांगे तो ? मसाई कोर्ट में गई तो ? हणमंता यह सब नहीं चाहता था। पर प्राप्त संतति को कैसे टाला जा सकता था ?

मेरे जन्म के साथ ही पटेल और जमींदारों की तमाम ख़ानदानी कोठियां बेचैन हुई होंगी। मेरे प्रथम उच्छ्वास से दुनिया की नीति घबरा गई होगी। मेरे क्रंदन से तमाम कुंतिया की छाती से दूध निकल आया होगा।

मां क्यों तैयार हुई इस बलात्कार को ? क्यों पचाया उसने उस अनैतिक संभोग को नौ मास नौ दिन भीतर–ही–भीतर ? किसलिए विकसित होने दिया उसने ऐसा गर्भ ? कितनी नज़रों ने छला होगा उसे व्यभिचारिणी कहकर। मेरे जन्म के बाद किसने बांटी होगी मिठाई ? किसने लाड़ किए मुझ पर ? किसने दी होगी साड़ी–चोली मेरी मां को ? किसने किया होगा मेरा नामकरण–संस्कार ? मेरा ख़ानदान कौन–सा ? मैं किस वंश का दीया ? किस अधिकारी पिता का मैं पुत्र ?

घर के निकट गंगू नामक एक आया रहती थी। वह मां की सहेली थी। गंगू मुझे पीठ पर बांध लेती। सूई, भिलांवा, धागों को बेचते हुए सड़क पर घुमाती। मुझ नन्हे का प्रदर्शन करते हुए कपड़े मांगती, अन्न मांगती। औरतें मेरे कारण और मेरे लिए फटे–पुराने कपड़े देतीं, तेल देतीं। मां गंगू को डांटती। मेरे कारण गंगू को काफ़ी कुछ मिल जाता। गंगू उदास हो जाती, कहती, ''बच्चे के लिए ही लोग कुछ–न–कुछ डालते हैं। मैं तेरे बच्चे को मारती थोड़े ही हूं'' दोनों झगड़ती। मां बाहर जाती कि गंगू धीरे–से मुझे उठा लेती और भीख मांगने निकल जाती।

मैं जब मैट्रिक में था तब गंगू सूई–भिलांवे का नारा लगाते हुए हमारे गांव आई थी। घर पर भी आई। मां ने उसके लिए चाय बनाई। गंगू ने बड़े प्यार से मुझे पास बैठाया। मुझे चुमा। पीठ पर हाथ फेरती रही। पूछने लगी, ''अक्कलकोट चलोगे ?'' और यह भी कहने लगी कि बाप के ख़िलाफ कोर्ट में जा। वास्तव में इस गंगूबाई का अर्थ था चलता–फिरता प्रोविजनल स्टोर। औरतों को सुई, भिलांवे, धागे, काली मणियां देती और बदले में बासी रोटियां, पुराने कपड़े लेती। गंगू निकल गई। मैं उदास हो गया। मैं बढ़ रहा था। कर्ण की तरह पूरे महाभारत पर।

मसाई के प्रति हणमंता का आकर्षण कम होने लगा। रोज़ झगड़े होते। हणमंता कहता, यह लड़का मेरा नहीं है उसकी आंखें धोंड़ी कुम्हार की तरह है। कुम्हार धोंड़ी ब्रिटिशों के समय का बहुत बड़ा डकैत था। अंत में, हणमंता के अत्याचारों और आरोपों से तंग आकर मसामाय मुझे लेकर अपनी मां संतामाय के घर आ गई। मां और धरती दो ही ऐसी इकाइयां थीं जो किसी भी बात को लेकर अपने भीतर स्वीकार कर लेते हैं। औरों की लुगाई सुंदर और अपनी कुरूप, सुंदर लड़की का जन्म दलित जाति के लिए यहां की पदेयद यहां का मुहावरा है। मसामाय को उसके पति ने छोड़ दिया था। इसके मूल में उसका सौंदर्य ही था। हणमंता भी भोगकर अलग हट गया। मां मुझे भाग की तरह लेकर जी रही थीं। कितने दिनों तक वह अकेली जी सकती थीं ?

जिनके पास वर्णश्रेष्ठत्व से प्राप्त सत्ता तथा वंश–परंपरा से प्राप्त संपत्ति रही है उन्होंने यहां की दलित स्त्रियों को सतत भोगा है। देहात–देहात के जमींदारों, पटेलों ने खेतों में काम करनेवाली दलित स्त्रियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। रंडियों की तरह उन्होंने इनका उपभोग किया है। दलितों की लड़कियां इनकी वासना का शिकार होती हैं। इनके द्वारा किए गए स्वैराचार से संतति जन्म लेती रहती है। जमींदार के इशारे पर जीनेवाला घर हर गांव में होता है। पूरा गांव इस घर को पटेल की रंडी का घर कहता रहता है। इस स्त्री की संतति की पहचान पटेल की रंडी के बच्चों के रूप में ही बनती है। पटेल की दया पर, खुश होकर ही जीने में उनके जीवन की सार्थकता होती है। यों बदले में उन्हें मिलता ही क्या है ?

मेरे बाद नागी हुई, निरमी हुई वनी, खुभी, पमी, तम्मा, इंदिरा, सिद्राम। कितने बच्चे। ये सब मेरे बाद हुए। एक ही गर्भ में एक ही रक़्त से सिंचित। मां एक, पर बाप अलग–अलग।

कर्ज में डूबे हैं 63 फीसदी ग्रामीण परिवार

आइ.एस.डी.

देश के कुल 1 लाख 77 हजार करोड़ रुपए के ऋण में से ग्रामीण परिवारों द्वारा लिए गये ऋण की हिस्सेदारी लगभग 63 प्रतिशत है। इससे यह जान पड़ता है कि ग्रामीण भारत ऋण के बोझ तले आकंठ दबा है। यह बात राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) की ताजा रिपोर्ट में कही गयी है। एनएसएसओ ने वर्ष 2002 में यह सर्वेक्षण कराया था।

एनएसएसओ ने बताया कि आवास क्षेत्र की रिपोर्ट के अनुसार जून 2002 तक देश में कुल 1 लाख 12 हजार करोड़ रुपए का ऋण लिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2002 में ग्रामीण क्षेत्र में प्रति परिवार औसत देनदारी 442 रुपए थी, जबकि शहरी क्षेत्र में इस देनदारी का औसत 331 रुपए प्रति परिवार है। 1991 के सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारों की संख्या में वृद्धि हुई है, लेकिन इस सर्वेक्षण में शहरी क्षेत्रों में इस संख्या में गिरावट आयी है। जून 2002 में ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारों की संख्या 27 प्रतिशत थी, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 18 प्रतिशत थी। वहीं 1991 के सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारों की संख्या 23 प्रतिशत थी। शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 19 प्रतिशत थी। यह सर्वेक्षण छह हजार 552 गांवों तथा तीन हजार 757 शहरी क्षेत्रों में कराया गया। इस सर्वेक्षण में ग्रामीण क्षेत्रों के 91 हजार 192 घरों तथा शहरी क्षेत्रों के 52 हजार 93 घरों को सम्मिलित किया गया। सर्वेक्षण आंध्र प्रदेश, केरल, राजस्थान तथा कर्नाटक के ग्रामीण इलाकों में कराया गया। बिहार के ग्रामीण क्षेत्र तथा जम्मू–कश्मीर के शहरी क्षेत्र में एक साल की अवधि के लिए नकद ऋण लेने वालों की संख्या 25 से 26 प्रतिशत थी।

ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में गैर कारोबारी उद्देश्यों के लिए लिया गया ऋण अधिक है। कुल लिये गये ऋण में उसकी हिस्सेदारी 76 से 85 प्रतिशत है। जिन परिवारों ने ऋण लिया, उनकी संपत्ति आंकी गयी तो वह 15 हजार रुपए से कम कम ही निकली। सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आयी कि 73 प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। उसमें 60 प्रतिशत परिवार कृषि क्षेत्र से जुड़े हैं। वहीं शहरी क्षेत्र में 36 प्रतिशत परिवार स्वरोजगार कर रही है। सर्वेक्षण में कहा गया है कि ऋण के अत्यधिक बोझ के कारण ही अमीर–गरीब का अंतर बेहद बढ़ गया है। ग्रामीण क्षेत्र में 20 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र में 27 प्रतिशत 'गरीब जनता' रह रही है। केवल दो प्रतिशत 'अमीर जनता' ही ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में रह रही है।

सर्वेक्षण में कहा गया है कि विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण मुहैया कराने में गैर संस्थागत एजेंसियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन गैर संस्थागत एजेंसियों द्वारा ऋण मुहैया कराने के कारण ही अमीर–गरीब का अंतर बढ़ा है।

ये सच है कि देश तो दीर्घावधि और अल्पावधि के तमाम कर्जों में डूबा ही है, देशवासी व्यक्तिगत तौर पर भी कर्ज के गंभीर मर्ज से त्रस्त हैं। आज विश्व के कुछ सबसे बड़े कर्जदारों में से एक हैं। कर्ज के कारण अपराधों में वृद्धि और अमीर–गरीब की खाई निरंतर चौड़ी होती जा रही है। देश के नीति–नियामकों ने आर्थिक उदारीकरण, गरीबी उन्मूलन, विदेशी निवेश, सर्वांगीण विकास जैसे आर्थिक उन्नयन के तमाम मसलों पर विशाद नीतियां बनायीं और आधा–अधूरा लागू भी किया पर वे इस बात से हमेशा आंखें फेरे रहे कि यदि कर्ज लेकर उननति करने की प्रवृत्ति एक सीमा से अधिक बढ़ी तो उसका क्या हश्र होगा। दरअसल यह एक ऐसा मर्ज है जो आर्थिक दशा को सुधारने वाले उपचारों को बेअसर कर देगा। कर्ज के कोढ़ में भ्रष्टाचार का खाज और बुरी स्थिति है। देश के सकल घरेलू उत्पाद का एक प्रतिशत तो रिश्वत में ही चला जाता है। विकास कार्यों के वास्ते लिए गए कर्ज का बड़ा हिस्सा प्रयुक्त होने से पहले ही रिस जाता है। देश, अधिकांश राज्य और अधिसंख्य जनता कर्ज में

शेष पृष्ठ 26 पर.....

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस,
62–ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका
नई दिल्ली–110067
टेलीफैक्स : 011–26177904
ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए